अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

# सर्वोदय जगत

वर्ष- 43, अंक- 19, 16-31 मई 2020

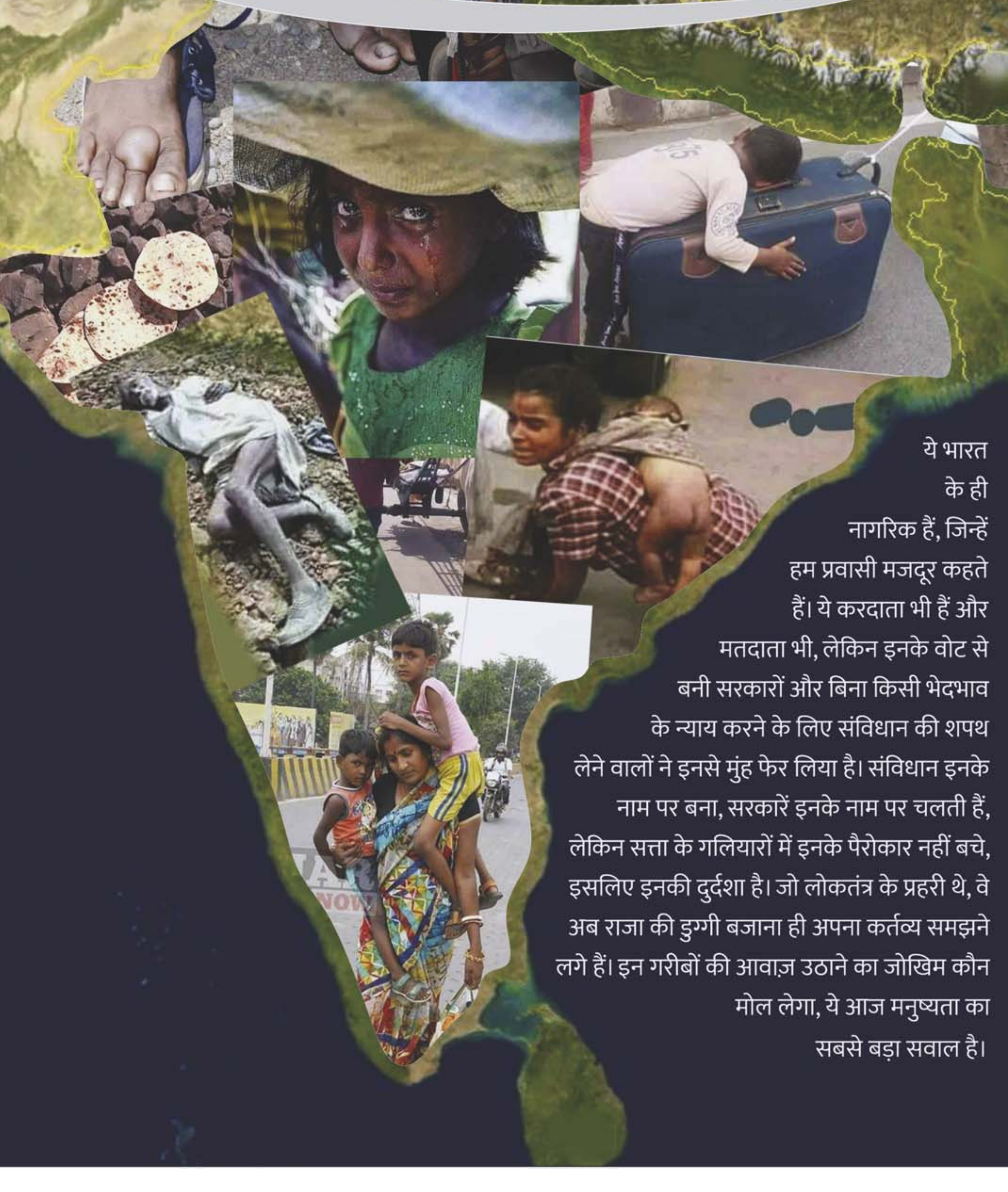

ये भारत
के ही
नागरिक हैं, जिन्हें
हम प्रवासी मजदूर कहते
हैं। ये करदाता भी हैं और
मतदाता भी, लेकिन इनके वोट से
बनी सरकारों और बिना किसी भेदभाव
के न्याय करने के लिए संविधान की शपथ
लेने वालों ने इनसे मुंह फेर लिया है। संविधान इनके
नाम पर बना, सरकारें इनके नाम पर चलती हैं,
लेकिन सत्ता के गलियारों में इनके पैरोकार नहीं बचे,
इसलिए इनकी दुर्दशा है। जो लोकतंत्र के प्रहरी थे, वे
अब राजा की डुग्गी बजाना ही अपना कर्तव्य समझने
लगे हैं। इन गरीबों की आवाज़ उठाने का जोखिम कौन
मोल लेगा, ये आज मनुष्यता का
सबसे बड़ा सवाल है।

सर्व सेवा संघ
( अखिल भारत सर्वोदय मंडल )
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
**सर्वोदय जगत**
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

**वर्ष : 43, अंक : 19, 16-31 मई 2020**

*अध्यक्ष*
**महादेव विद्रोही**

*संपादक*
**बिमल कुमार**
*सहसंपादक*
**प्रेम प्रकाश**
**09453219994**
*संपादक मंडल*
**डॉ. रामजी सिंह** **भवानी शंकर कुसुम**
**प्रो. सोमनाथ रोडे** **अरविन्द अंजुम**
**रमेश ओझा** **अशोक मोती**

*संपादकीय कार्यालय*
**सर्व सेवा संघ**
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
**फोन : 0542-2440-385/223**
**ईमेल :** sarvodayajagat@gmail.com
Website : ssprakashan.com

**शुल्क**

| | | |
|---|---|---|
| एक प्रति | : | 05 रुपये |
| वार्षिक | : | 100 रुपये |
| आजीवन | : | 1000 रुपये |

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

## इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. अध्यक्ष की कलम से... 3
3. जब झूठ से सामना होगा तो स्मृतियां... 5
4. श्रमिक चेतना के उन्मेष का समय... 8
5. क्या प्रवासी मजदूर देश के नागरिक नहीं... 9
6. अभूतपूर्व संकट में राष्ट्रीय सहमति... 10
7. 21वीं सदी का पहला ग्लोबल झूठ था... 12
8. हर भारतवासी को विश्व नागरिक... 14
9. यह एक शांतियोद्धा का प्रस्थान है... 15
10. मेरे मन में उनकी प्रतिष्ठा के लिए... 16
11. गांधी ने आखिर नेहरू को अपना... 17
12. विनम्र श्रद्धांजलि... 18
13. गतिविधियां एवं समाचार... 19
14. देवेन्द्र आर्य की सात ग़ज़लें... 20

**संपादकीय**

# मजदूरों के प्रति संवेदनहीनता

श्रम को देखने की दो दृष्टि है। एक मानवीय व राष्ट्र निर्माणकर्ता के रूप में तथा दूसरे संसाधन के रूप में। कोरोना महामारी एवं लॉकडाउन के परिणामस्वरूप उपजी परिस्थितियों ने यह उजागर कर दिया है कि सत्ता प्रतिष्ठान के लिए श्रम महज एक संसाधन है। जब सरकार ने यह निर्णय लिया कि विदेशों में फंसे संपन्न वर्ग के लोगों को भारत वापस लाना है, तब उसने यह भी छूट दी कि कुछ श्रमिक स्पेशल ट्रेनें भी चलायी जायं ताकि कुछ प्रवासी मजदूरों को उनके गांव भेजवा दिया जाये।

मजदूरों का सरकार के प्रति अविश्वास इस कदर बढ़ चुका था कि पैदल, साहिकल से या अन्य किसी साधन से हजारों की संख्या में मजदूर व उनके परिवार के लोग घर वापस जाने के लिए निकल पड़े। पास में पैसे नहीं, पुलिस का डंडा और प्रशासन की उदासीनता, सबने मिलकर एक बड़ी त्रासदी पैदा कर दी। ट्रेन से लौटने की आशा खत्म हुई, तो इस यंत्रणापूर्ण यात्रा में कुछ ट्रेन से कट गये। ये मजदूरों की तप-तपस्या नहीं है, उनकी लाचारगी है। तथा सत्ता प्रतिष्ठान की नैतिकता-विहीनता का प्रतिउत्तर है। क्योंकि वे समझ चुके हैं कि श्रमिक-स्पेशल से वापस भिजवाने का झांसा, 2% मजदूरों को भी वापस ले जाने में समर्थ नहीं होगा।

लेकिन ये सरकार की मजबूरी नहीं, रणनीति है। कर्नाटक सरकार ने तो साफ कह दिया है कि वह प्रवासी मजदूरों को वापस नहीं जाने देगी क्योंकि बिल्डर्स लॉबी का दबाव है। इस खेल को समझें। जब तक बाजार मजदूरों को मजबूर रखता है, तब तक राजसत्ता अपने को अलग-थलग रखती है, किन्तु जब बाजार सक्रिय नहीं होता तो राजसत्ता उन्हें बंधुआ बनने पर मजबूर करती है। बाजार ने श्रम को प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करने के अधिकार से बेदखल कर दिया। अपने ही देश के अंदर गिरमिटिया मजदूरों जैसा एक नया वर्ग खड़ा हो गया।

कोरोना के बाद सरकार की नीतियों को भी समझें। बैंक डिफाल्टर्स का कर्जा बट्टे खाते में, नयी लोन (ऋण) नीति में किसी प्रकार की सिक्योरिटी देने की जरूरत नहीं। तो दूसरी ओर श्रमिक कानूनों में बदलाव (उत्तर प्रदेश, गुजरात, मध्य प्रदेश) करके उन्हें पूर्णतः श्रम विरोधी बनाया जा रहा है। यह है मजदूरों के प्रति सत्ता का अमानवीय व संवेदनहीन चेहरा। अब उन्हें नागरिक अधिकारों और सम्मानपूर्वक जीविका के अधिकार से भी वंचित किया जा रहा है। यह सुनिश्चित किया जा रहा है कि जब लॉकडाउन में ढील दी जाये, तो उद्यमों को सस्ता बंधुआ श्रम उपलब्ध रहे, बिना श्रम कानूनों की बाध्यता के।

सत्ता प्रतिष्ठान, उद्यमों के पक्ष में तथा मजदूरों के हितों पर कुठाराघात कर, कोरोना महामारी का लाभ उठा रहा है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) के अनुसार असंगठित क्षेत्र के लगभग 40 करोड़ श्रमिक, गहरी गरीबी के दायरे में पहुंच जायेंगे। यानि उनके लिए रोजगार के अवसर भी काफी घटेंगे तथा उनकी मजदूरी में भी भारी गिरावट आयेगी।

अगर हम सारी प्रक्रियाओं को एक व्यापक फ्रेम में रखें तो पायेंगे कि कोरोना महामारी का उपयोग सत्ताएं लोगों पर नियंत्रण का शिकंजा और अधिक कसने के लिए कर रही हैं। इसलिए मीडिया द्वारा कोरोना पर फोकस करने के बजाय यह बताया जा रहा है कि कौन-कौन शत्रु हैं। शत्रु से लड़ने की मानसिकता खड़ी की जा रही है।

कोरोना के बाद की दुनिया एक नयी दुनिया होगी। राजसत्ताओं की बेबसी एवं सामर्थ्यहीनता से लोग सत्ता के प्रति निराशा भरी दृष्टि रखेंगे। ऐसे में जरूरी है कि लोगों के संगठन का निर्माण तथा लोकसत्ता के निर्माण की दिशा में काम करना हम आज से ही शुरू कर दें। प्रारंभिक बिन्दु यह हो सकता है कि 30-30 लोगों का, जो कोरोना संक्रमित न हों, ग्रुप बनायें। यह ध्यान रखें कि इस ग्रुप में वे ही जुड़े, जो पूर्णतः कोरोना मुक्त हों। यह ग्रुप आर्थिक गतिविधियों के संचालन का भी एक कार्यक्रम उठाये। गांव में खेती, पशुपालन व ग्रामोद्योग को आधार बनाकर ये ग्रुप अपना मिशन आगे बढ़ा सकते हैं। सर्वोदय से जुड़े लोग, ऐसे ग्रुपों को बनाने व सक्रिय करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। कोरोना बाहर से आने वाली महामारी है, इसलिए बाहर के संपर्क में पूर्ण सावधानी रखें। हमारी सामूहिकता तथा सामुदायिकता हमारा मनोबल बढ़ायेगी।

**–बिमल कुमार**

# पं. नेहरू का पुण्य स्मरण

आधुनिक भारत के निर्माता और युवा दिलों की धड़कन पं. नेहरू की पुण्यतिथि पर उन्हें याद करते ही आधुनिक भारत की तस्वीर एक-एक कर सामने आने लगती है। भारत को विश्व में पहचान दिलाने वाली अनेक संस्थाओं की स्थापना पं. नेहरू के नेतृत्व में ही हुई या उनकी नींव रखी गयी, जिसमें भारतीय प्रबंध संस्थान, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, भाभा परमाणु अनुसंधान संस्थान, भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, भौतिकी अनुसंधान प्रयोगशाला, रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद, भिलाई और बोकारो के इस्पात संयंत्र, निर्वाचन आयोग और योजना आयोग के नाम अग्रणी हैं। 200 वर्षों की गुलामी के बाद भारत आर्थिक दृष्टि से बिल्कुल कमजोर हो गया था। बावजूद इसके इन संस्थाओं की स्थापना का सपना देखना और उसे जमीन पर उतारना कोई छोटी बात नहीं थी।

**भले ही अभी नेहरू मेरी बात न मानते हों, जो मतभेद होते हैं, जता देते हैं। लेकिन मैं जानता हूं कि मेरे बाद नेहरू मेरी ही भाषा बोलेंगे। अगर ऐसा न भी हुआ, फिर भी मैं इसी इच्छा से मरना चाहूंगा। -महात्मा गांधी**

आज पं. नेहरू द्वारा स्थापित एक एक संस्थानों को ध्वस्त करने या उसके स्वरूप में परिवर्तन करने की मुहिम-सी चलायी जा रही है। जो लोग यह मुहिम चला रहे हैं, उन्हें जब तक इसके नुकसान का अहसास होगा, तब तक बहुत देर हो चुकी होगी। इसलिए भारत के भविष्य की चिन्ता करने वाले हर सजग नागरिक का कर्तव्य है कि हर हालत में इन विघटनकारी ताकतों को रोके।

पिछले कुछ वर्षों से पं. नेहरू के बारे में एक खास वर्ग के लोग अनर्गल बातें फैलाते रहे हैं। उनमें से एक यह है कि उनका जीवन सुख-सुविधाओं के उपयोग में बीता तथा उनका भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में कोई योगदान नहीं था। यह बात मूर्खता से अधिक कुछ नहीं है। इन्हें नहीं मालूम कि वे लगभग 9 वर्षों तक अंग्रेजों की विभिन्न जेलों में रहे। इतना ही नहीं, उनके पिता मोतीलाल नेहरू ने, जो उस जमाने में भारत के दिग्गज वकीलों में से एक थे, अपने को पूरी तरह आजादी के आंदोलन में झोंक दिया और उन्हें भी कई बार जेल यात्राएं करनी पड़ीं।

पं. नेहरू की दो रचनाएं 'विश्व इतिहास की झलक' तथा 'भारत एक खोज' इतिहास की धरोहर तो है ही, साथ ही ये गद्यकाव्य जैसी भी है। दोनों पुस्तकें रोमांच से भरी हुई हैं। जिन लोगों को भारत का वास्तविक परिचय चाहिए, उन सबके लिए ये दोनों पुस्तकें अनिवार्य रूप से पठनीय हैं। इस पर दूरदर्शन ने तो एक धारावाहिक भी बनाया है। हर किसी को, खासकर किशोरों को इसे अवश्य देखना चाहिए।

नेहरू जी गांधीजी के परम शिष्य थे। बावजूद इसके, उनके कई मुद्दों पर मतभेद भी थे। गांधी जी को इसका पता था। बावजूद इसके, उन्होंने उन्हें अपना राजनीतिक उत्तराधिकारी घोषित किया। गांधीजी ने एक बार कहा- भले ही अभी नेहरू मेरी बात न मानते

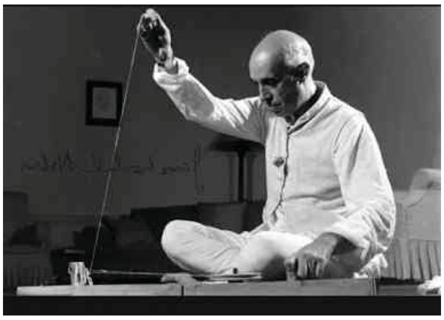

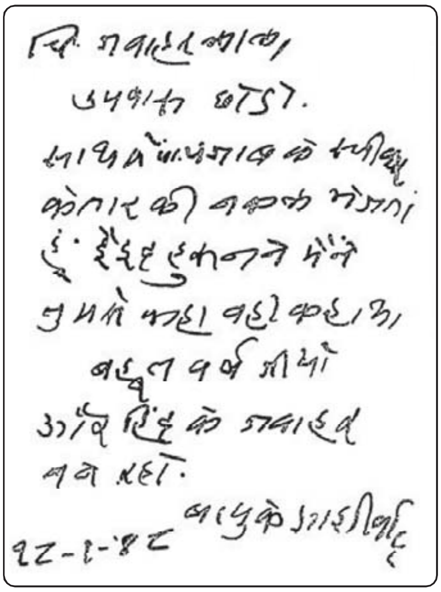

चि. जवाहरलाल,
उपवास छोडो.
आपके पं. पंजाब के स्वीकृत कोनार की बात मानता
हूं। [illegible]
[illegible]
बहुत वर्ष जीयो
और हिंद के जवाहर
बने रहो.
बापु के आशीर्वाद
१८-१-४८

## पं. नेहरू की जेल यात्राएं

**आजादी के आंदोलन के दौरान नेहरू जी को 9 बार जेल जाना पड़ा और कुल मिलाकर लगभग 9 वर्ष वे जेल में रहे। लंबी अवधि की उनकी सजाओं में सश्रम कारावास भी शामिल था। अलग-अलग समयावधि के लिए हुई उनकी कुल जेल यात्रा का विवरण इस प्रकार है-**

**पहली बार-** 6 दिसंबर 1921 से 3 मार्च 1922 (कुल 88 दिन), जिला जेल लखनऊ।

**दूसरी बार-** 11 मई 1922 से 31 जनवरी 1923 (कुल 266 दिन), इलाहाबाद एवं लखनऊ जेल।

**तीसरी बार-** 22 सितंबर 1923 से 4 अक्टूबर 1923 (कुल 12 दिन) नाभा जेल, पंजाब।

**चौथी बार-** 14 अप्रैल 1930 से 11 अक्टूबर 1930 (कुल 181 दिन), नैनी सेंट्रल जेल, इलाहाबाद।

**पांचवीं बार-** 19 अक्टूबर 1930 से 26 जनवरी 1931 (कुल 100 दिन), नैनी सेंट्रल जेल, इलाहाबाद।

**छठवीं बार-** 26 दिसंबर 1931 से 30 अगस्त 1933 (कुल 614 दिन), नैनी सेंट्रल जेल, इलाहाबाद।

**सातवीं बार-** 12 फरवरी 1934 से 3 सितंबर 1935 (कुल 565 दिन), अलीपुर सेंट्रल जेल, कोलकाता जेल, देहरादून जेल, नैनी सेंट्रल जेल, अल्मोड़ा जेल।

**आठवीं बार-** 31 अक्टूबर 1940 से 3 दिसंबर 1941 (कुल 399 दिन), गोरखपुर जेल, देहरादून जेल, लखनऊ जेल।

**नैवीं बार-** 9 अगस्त 1942 से 15 जून 1945 (कुल 1041 दिन), अहमदनगर फोर्ट जेल, बरेली जेल, अल्मोड़ा जेल।

*स्रोत-संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार*

हों, जो मतभेद होते हैं, जता देते हैं। लेकिन मैं जानता हूं कि मेरे बाद नेहरू मेरी ही भाषा बोलेंगे। अगर ऐसा न भी हुआ, फिर भी मैं इसी इच्छा से मरना चाहूंगा।

गांधीजी जानते थे कि भारत को यदि आगे बढ़ाना है, तो एक अंतर्राष्ट्रीय स्तर के व्यक्तित्व का नेतृत्व आवश्यक है। अखिल भारत कांग्रेस कमेटी के एक वार्षिक अधिवेशन में, जिसमें अध्यक्ष का चुनाव होना था, वे खुलकर पं. नेहरू के पक्ष में खड़े रहे। परिणामस्वरूप सरदार पटेल ने अपना नाम वापस लिया और पं. नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। वे लोगों के बीच कितने लोकप्रिय थे, इसका अनुमान इतने भर से लगाया जा सकता है कि वे पांच बार अखिल भारत कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष रहे।

अपनी जमात में भी उनके बारे में तरह-तरह की भ्रांतियां व्याप्त हैं। मैं सभी कार्यकर्ताओं से अपील करता हूं कि वे इन विषयों की गहराई में जायं। मैं समझता हूं कि उन्होंने सर्वोदय परिवार को हमेशा अपना परिवार माना। सर्व सेवा संघ के स्थापना सम्मेलन में वे स्वयं तो उपस्थित थे ही, साथ ही उस समय के कांग्रेस के सभी महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय नेता भी विनम्रता के साथ उपस्थित थे।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण एवं प्रभावती दीदी का नेहरू परिवार के साथ अंतरंग संबंध था। जेपी, विरोधी पार्टी के पदाधिकारी थे, इसके बावजूद उन्होंने नेहरू के प्रति कभी किसी अपमानजनक शब्द का उपयोग नहीं किया। ऐसे में कई लोगों को यह नागवार गुजरता था। आजकल विरोधियों का अपमान अपनी पार्टी के प्रति निष्ठा का प्रतीक माना जाने लगा है।

इलाहाबाद में हुए सोशलिस्ट पार्टी के एक सम्मेलन में उन्हें नेहरू का एजेंट कहते हुए परचा तक बांटा गया। किन्तु उन्होंने इस परचे का कोई जवाब नहीं दिया।

पं. नेहरू की पुण्यतिथि पर मैं उन्हें शत शत नमन तथा वंदन करता हूं।

# केरल को सलाम!

भारत में सबसे पहले कोरोना प्रभावित तीन छात्र चीन से आये थे। केरल सरकार ने बड़ी मुस्तैदी के साथ राज्य में कोरोना संक्रमण का मुकाबला किया। इसके कारण आज केरल दुनिया रोलमॉडल बन गया है। अनेक राज्यों में जहां सैकड़ों मौतें हो रही हैं, केरल में मात्र चार मौतें ही हुई हैं। दुनिया के स्तर पर कोरोना रिकवरी का आंकड़ा करीब 35% है, जबकि केरल में रिकवरी का आंकड़ा 92.5% है। केरल सरकार ने कोरोना पर पूरी तरह नियंत्रण प्राप्त कर लिया था, लेकिन बाद में अन्य राज्यों और विदेशों से यात्री आने के कारण वहां दुबारा मरीज बढ़ने लगे। यह प्रसंग लिखते-लिखते अभी केरल में संक्रमितों की कुल संख्या 500 से अधिक हो गयी है, जबकि देश भर में कुल संक्रमितों की संख्या लगभग 90 हजार है और 2500 से अधिक लोगों की मृत्यु हो चुकी है।

मैं इसके लिए केरल सरकार को, विशेषकर वहां की स्वास्थ्य मंत्री शैलजा टीचर को साधुवाद देता हूं और सौ सौ सलाम करता हूं।

केरल सरकार ने प्रवासी मजदूरों के बीच भी राहत के स्तुत्य कार्य किये हैं। वहां अलग-अलग क्षेत्रों के लोगों के खानपान की पसंद के अनुसार अलग-अलग रसोईघर चलाये जा रहे हैं। इसका मजदूरों के मन पर अनुकूल प्रभाव पड़ा है।

केरल सरकार ने प्रवासी मजदूरों को अतिथि श्रमिक का नाम दिया है। मात्र इन दो शब्दों ने श्रमिकों के अंदर आत्मसम्मान की भावना भर दी है। केरल सरकार इन अतिथि श्रमिकों के मोबाइल में हर महीने 100 से लेकर 200 रुपये तक रीचार्ज भी करवा रही है। ❑

## हे श्रमिक! तुम्हारी जय हो!!

हे श्रमिक,
तुम देशभक्त हो, तुम महान हो।
तुम विकास की रीढ़ हो,
इसीलिए देश के विकास के लिए तुम्हारा
12 घंटे काम करना ज़रूरी है
आओ इस यज्ञ में जुड़ जाओ।
यह तुम्हारा राष्ट्रीय कर्तव्य है।
तुम्हें बादशाह सलामत से
अपेक्षा थी कि वे तुम्हारे बारे में
सहायता का कुछ ऐलान करेंगे।
पर वे करोड़ों की बात करते रहे,
इसमें बेचारे मजदूर की क्या ज़रूरत?
अब भी हज़ारों-हज़ार मज़दूर नंगे पाँव,
सिर पर गठरी और कंधे पर बच्चे उठाये
अपने-अपने गाँवों की ओर चलते जा रहे हैं।
उनका सड़क पर चलना मना है,
क्योंकि यह राजमार्ग है।
इसपर आम लोगों का चलना मना है।
किसी ने हिम्मत की तो
पुलिस के डंडे से रूबरू होना पड़ता है।
काश! राजमार्ग बनाने वालों ने
कभी जनमार्ग बनाने के बारे में भी सोचा होता।
'खलक खुदा का, मुलुक बाश्शा का
हुकुम शहर कोतवाल का...
हर खासोआम को अगाह किया जाता है
कि ख़बरदार रहें
और अपने-अपने किवाड़ों को अंदर से
कुंडी चढ़ाकर बंद कर लें।
बच्चों को सड़क पर न भेजें...'
रेल भी बाश्शा की है
इसलिए इस पर चलोगे तो तुम्हारी रोटी
तुम्हारे ही ख़ून से सान दी जायेगी।
'राष्ट्र नहीं होती भुक्खड जनता'
हमें उद्योगों को बढ़ाना है, क्योंकि
जीडीपी तुमसे नहीं, उनसे बढ़ती है।
राष्ट्र के विकास के लिए
ज़रूरी हैं कल-कारख़ाने
और इसे बनाने के लिए चाहिए ज़मीन,
वह हमें लेनी ही पड़ेगी,
इसके लिए भले ही उजड़ जायें तुम्हारे
घर और गाँव।
अधिकार और क़ानून की बात मत उठाओ
विकास की राह में रोड़े मत अटकाओ
'राष्ट्र नहीं होता पर्यावरण, राष्ट्र नहीं होता जंगल,
राष्ट्र नहीं होती मछली, राष्ट्र नहीं होती कोयल।
राष्ट्र नहीं होती नदी, राष्ट्र नहीं होती हवा।
राष्ट्र नहीं होते पशु, राष्ट्र नहीं होती फ़सल।'
और जनता तो राष्ट्र पर
कुर्बान होने के लिए ही होती है।
इसलिए कुर्बानी के पथ पर
कदम कदम बढ़ाये जाओ,
खुशी के गीत गाये जाओ।

–महादेव विद्रोही

## वह आता, दो टूक कलेजे को करता

वह आता,
दो टूक कलेजे को करता, पछताता
पथ पर आता।

पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।

साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए,
बाएँ से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दया दृष्टि-पाने की ओर बढ़ाए।
भूख से सूख ओठ जब जाते
दाता-भाग्य विधाता से क्या पाते?
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।
चाट रहे जूठी पत्तल वे सभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए!

ठहरो! अहो मेरे हृदय में है अमृत, मैं सींच दूँगा
अभिमन्यु जैसे हो सकोगे तुम
तुम्हारे दुख मैं अपने हृदय में खींच लूँगा।

–सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

# जब झूठ से सामना होगा तो स्मृतियां सवाल पूछेंगी

❑ डॉ यान लियांके

*सृजनात्मक लेखन, यह एक विषय है जो ग्रेजुएशन के विद्यार्थियों के लिए हांगकांग यूनिवर्सिटी के पाठ्यक्रम में है।इसके शिक्षक हैं प्रो. यान लियांके। 21 फरवरी 2020 को जब चीन में क्रूर कोरोना का कहर जारी था, तब प्रो. लियांके ने वर्क फ्रॉम होम के तहत अपने घर से ही अपने विद्यार्थियों को सम्बोधित किया। प्रो. लियांके ने इस ऑनलाइन क्लास के लिए व्याख्यान का विषय चुना था- सत्य, स्मृति और सत्ता। चीन में कोरोना का कहर दिसंबर 2019 से ही शुरू हो गया था, लेकिन अब चीन जीत की मुद्रा में है। इस बीच जो कुछ घटित हुआ, उससे दुनिया दहल उठी। यातना, पीड़ा और असहायता का जो मंज़र खड़ा हुआ उसने लोगों में दहशत भर दी। लेकिन पीड़ा की वे जीती जागती कहानियां अचानक विजय के दर्प में मौन हो गयीं। प्रो. लियांके के कथाकार मन को यह सबकुछ स्मृतियों पर पाबंदी-सा लगता है। वे इन स्मृतियों को न लिखने के लिए डाले जा रहे दबाव का ज़िक्र करते हैं। सत्ता चाहे किसी भी देश की हो, उसका लोकविरोधी चरित्र उसकी अक्षमता और असंवेदनशीलता पर पर्दा डालता है और ठीक इसके उलट उसकी सक्षमता और सफलता का ढिंढोरा पीटता है। प्रो. लियांके अपने विद्यार्थियों में भूत, वर्तमान और भविष्य की चेतना भर देना चाहते हैं। उनका यह व्याख्यान पढ़ने से हमारे अंदर एक बेचैनी पैदा होती है। स्मृतियों के संरक्षण का पैगाम देने वाले प्रो. यान लियांके चीन के अत्यंत प्रतिष्ठित कथाकार हैं, जिनके अनेक कथा संकलन और उपन्यास प्रकाशित, पुरस्कृत और विभिन्न भाषाओं में अनूदित हैं। वे चीन के सर्वप्रतिष्ठित लू शुन प्राइज और लाओ शे अवार्ड से सम्मानित हो चुके हैं और फ्रांस काफ्का प्राइज सहित अनेक विश्वस्तरीय साहित्यिक सम्मानों के अधिकारी रहे हैं। मैन बुकर इंटरनेशनल प्राइज के लिए वे एकाधिक बार शीर्ष दावेदार भी रहे हैं। कभी चीन की सेना में प्रोपेगैंडा लेखक रह चुके यान लियांके अपने स्वतन्त्र विचारों के लिए देश के शासन के बार बार कोपभाजन बनते रहे हैं। उनकी किताबों पर कई बार प्रतिबन्ध लगे और देश से बाहर उनकी यात्राओं पर रोक लगायी गयी। ड्रीम ऑफ़ दिंग विलेज, सर्व द पीपल, लेनिन्स किसेज, द ईयर्स, मंथ्स, डेज इत्यादि उनकी चर्चित किताबें हैं। इस व्याख्यान का चीनी से अंग्रेजी अनुवाद ग्रेस चोंग ने और अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद सी टी यादवेन्द्र ने किया है।* **-सं.**

**प्यारे** विद्यार्थियों,

यह मेरा पहला ई लेक्चर है, पर शुरू करने से पहले मैं तुमलोगों को थोड़ा पीछे ले जाना चाहता हूँ। जब मैं छोटा था और एक ही गलती बार-बार दोहराता था तो मेरे माँ-पिताजी मुझे खींच कर सामने खड़ा करते और मेरे माथे की ओर ऊँगली दिखाकर कहते-*तुम इतने भुलक्कड़ कैसे हो गए?* जब मैं थोड़ा बड़ा हुआ तो चीनी भाषा के क्लास में कई बार ऐसा होता था कि सैकड़ों बार याद की हुई कविता या कोई और पाठ ठीक से सुना नहीं पाता था, तब टीचर मुझे खड़ा कर देते और पूरी क्लास के सामने कहते- तुम इतने भुलक्कड़ कैसे हो गए?

स्मरण करने की जो क्षमता है, वह ऐसी मिट्टी है, जिसमें स्मृतियाँ पनपती हैं। इस मिट्टी में पैदा होने वाले फल हैं स्मृतियाँ। स्मृतियाँ और किसी चीज को याद रखने की क्षमता ही मनुष्य को पशुओं या पेड़ पौधों से अलग करती है। यह विकास और परिपक्वता की हमारी पहली जरूरत है। कई मौकों पर मैं यह मानने को मजबूर होता हूँ कि यह भोजन करने, कपड़े पहनने या साँस लेने से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। एक बार हम अपनी स्मृतियों से

टूट कर अलग हो जाएँ, तब हम यह भी भूल जाएँगे कि खाना कैसे खाया जाता है या खेत में हल कैसे जोता जाता है। सुबह जब हम उठेंगे, तब हमें यह भी याद नहीं रहेगा कि हमने पहनने वाले कपड़े कहाँ रखे हैं।

पर आज मैं इन बातों को क्यों याद कर रहा हूं? इसकी वजह है कोविड-19, एक राष्ट्रीय और वैश्विक आपदा, जिसको अभी तक वास्तव में काबू नहीं किया जा सका है। परिवार अभी भी यहाँ वहाँ बिछुड़े पड़े हैं और पूरे हुबेई,वुहान और दूसरे शहरों में हृदय विदारक चीत्कारें अब भी सुनाई दे रही हैं। हालाँकि यह भी सही है कि चारों तरफ विजय गान भी गूँज रहे हैं, क्योंकि अपने अनुकूल आँकड़े प्रस्तुत किए जा रहे हैं। चारों ओर लाशें बिछी पड़ी हैं और लोग शोक में डूबे हुए हैं, फिर भी विजयोल्लास भरे गीत गाये जाने को तैयार हैं और लोग यह घोषणा करने के लिए तत्पर भी हैं कि देखो तो, कितने बुद्धिमान और महान हैं हमारे लोग!

जब से यह कोविड-19 हमारे जीवन में आया है, तब से लेकर अब तक हमें बिल्कुल नहीं मालूम कि वास्तव में कितने लोगों की जान इसने ली, कितने लोग अस्पतालों में मर गए और अस्पतालों से बाहर कितने मर खप गए। हमें इस अफरातफरी में इसका मौका ही नहीं मिला कि हम किसी तरह की छानबीन करें और इस बारे में किसी से कोई प्रश्न पूछें, लेकिन इससे भी बुरी बात यह है कि ऐसी छानबीन और ऐसे सवाल समय के साथ धूमिल पड़ जाएँगे या भुला दिए जाएँगे और हमारे सामने यह हादसा हमेशा हमेशा के लिए एक गूढ़ रहस्य बनकर खड़ा रहेगा। आगे आने वाली पीढियों के लिए हम विरासत में जीवन मरण का उलझा हुआ एक मकड़जाल छोड़ जाएँगे।

अतीत में और वर्तमान में भी ऐसा क्यों होता रहा है कि इंसान, परिवार, समाज, युग

या देश पर एक के बाद एक विपत्ति आती रही है? और इतिहास की ये त्रासद विभीषिकाएँ एक एक बार में हजारों, लाखों सामान्य लोगों को अपना शिकार बनाती रही है? इनके पीछे अनगिनत कारण हो सकते हैं, जिनको हम जानते नहीं, जिनके बारे में हम तहकीकात नहीं करते या जिनके बारे में हमें हिदायत दी गई है कि कोई सवाल नहीं करना है (और हम उनका बड़ी शालीनता के साथ सिर झुका कर पालन भी करते हैं)। इन सब के पीछे सिर्फ और सिर्फ एक फैक्टर है, मनुष्य। हम सब चीटियों की तरह नाचीज़ हैं और हम भूल जाने वाले लोग हैं, स्मृतियों को पीछे छोड़ देने वाले लोग।

हमारी स्मृतियाँ नियंत्रित की जा रही हैं, उनकी अदला बदली की जा रही हैं और वे मिटाई भी जा रही हैं। हम सिर्फ यह याद रखते हैं कि दूसरों ने हमें क्या क्या याद रखने को कहा और बड़ी मासूमियत से यह भूल जाते हैं कि भूल जाने को क्या क्या कहा गया था। जब हमें तरेर कर आंख दिखाई जाती हैं, हम खामोश हो जाते हैं और जब हुक्म दिया जाता है तब जोर जोर से गाने लगते हैं।

एक उदाहरण देता हूँ। मैं उन पुरानी किताबों की धूल भरी जिल्दों की बात नहीं कर रहा हूँ, जो अब अतीत का हिस्सा बन चुकी हैं, बल्कि बिल्कुल आसपास की, 20 साल पहले की, जो कुछ प्रमुख घटनाएँ घटी हैं, उनको याद करते हैं। ये घटनाएँ तुम्हारी तरह के 80 और 90 के दशक में पैदा हुए नौजवानों के लिए प्रासंगिक हैं और इनके तजुर्बे को तुम याद कर सकते हो। जैसे एड्स, सार्स और कोविड-19 जैसी राष्ट्रीय आपदाएँ, ये सभी मानव निर्मित त्रासदियाँ हैं या ऐसी प्राकृतिक आपदाएँ हैं, जिनके सामने इंसान का कोई वश नहीं चलता। जैसे तांगशान या वेंचुआन के विनाशकारी भूकंप? क्या दोनों तरह की विपत्तियों में ह्यूमन फैक्टर को एक समान माना जा सकता है? क्या यह नहीं लगता कि 17 साल पहले फैली सार्स महामारी में और इन दिनों के कोविड-19 महामारी के फैलने का पैटर्न एक ही तरह का है? क्या इन दोनों घटनाओं का थिएटर डायरेक्टर एक ही नहीं लगता? 17 सालों के अंतराल के बाद बिल्कुल एक ही तरह का घटनाक्रम हमारी आँखों के सामने फिर से दोहराया गया है। इंसान के तौर पर हमारी हैसियत ही क्या है, धूल के सिवा? हम इतने अपंग और अक्षम हैं कि नाटक के डायरेक्टर के बारे में नहीं जान पायेंगे और न ही हमारे पास कोई ऐसा कोई कौशल है, जिससे हम स्क्रिप्ट लिखने वाले के विचारों और धारणाओं के सूत्र पकड़ सकें।

पर क्या जब अगली बार फिर से एक बार हमारी आँखों के सामने यह मौत का नाटक दोहराया जाएगा तो हमें अपने आप से यह सवाल नहीं करना चाहिए कि पिछली बार जब ऐसा हुआ था, उस समय की हमारी स्मृतियाँ कहां गुम हो गईं? हम उनके बारे में क्यों नहीं याद करते? कोई तो होगा, जिसने हमारी स्मृतियों को धो पोंछ कर मिटा डाला, लीप पोत कर सब कुछ साफ कर दिया। कौन है वह? सड़क पर, खेत में जो गंदगी पड़ी रहती है, कूड़ा कचरा पड़ा रहता है, स्मृतिविहीन लोग वही कूड़ा कचरा हैं। हम उन्हें कुचलते हुए जूते की मनमाफिक दिशा में निर्बाध गति से बढ़ते जा रहे हैं। स्मृतिविहीन लोग वास्तव में लकड़ी के उन लट्ठों और तख्तों की मानिंद होते हैं, जो उस पेड़ को भूल जाते हैं, जिसने उन्हें पैदा किया, जीवन दिया। ध्यान रखो ,ऐसे लोगों के जीवन पर कुल्हाड़ियों और आरियों का भरपूर नियंत्रण होता है और उनका भविष्य वही तय करते हैं।

यदि हम लिखने पढ़ने से प्यार करने वाले लोग, जीवन को एक अर्थ देने वाले लोग अपनी स्मृतियों से विमुख हो जाएँ, चाहे वह जीवन की स्मृतियाँ हों या रक्तपात की स्मृतियाँ, तब लिखने का मतलब ही क्या रह जाता है? साहित्य का मूल्य फिर क्या बचेगा? ऐसे में किसी समाज को लेखकों की आवश्यकता ही क्या है? आपके अथक परिश्रम और अध्यवसाय से उपजे हुए साहित्य और अनेकानेक किताबों को कठपुतलियों से अलग कैसे माना जा सकता है, जब उन सब के विषय और रचना शैली को नियंत्रित कोई और कर रहा हो? रिपोर्टर जो देखते हैं, यदि उसे अपनी रिपोर्ट में न लिखें, लेखक अपनी स्मृतियों और भावनाओं को अपनी रचनाओं में स्थान न दें और आम इंसान हरदम गीतात्मक शैली में पॉलिटिकल करेक्टनेस की ढपली बजाते रहें तो हाड़ मांस और रक्त प्रवाह वाले हम इंसानों को धरती पर आकर जीने का मकसद भला कौन बताएगा?

फर्ज करो कि फांग फांग जैसे लेखक वुहान में मौजूद नहीं होते तब क्या होता? उन्होंने अपनी डायरी, अपनी कलम, अपनी व्यक्तिगत स्मृतियाँ और भावनाएँ किसी दबाव में आकर इतिहास में दर्ज करने से रोकी नहीं। ऐसा नहीं है कि फांग फांग ही ऐसा करने वाले इकलौते इंसान हैं, बल्कि उनकी तरह के हजारों, लाखों लोग हैं, जो अपने मोबाइल के माध्यम से संकट में मदद की गुहार लगाते रहे। पर हमने क्या सुना? क्या देखा?

कभी कभी ऐसा होता है कि हमारे दौर की अभूतपूर्व झंझा में हमारी स्मृतियों की, फालतू के फोम, पागल लहर और शोर कहकर उपेक्षा की जाती है। नतीजा यह होता है कि समय की तेज धार उन आवाजों और उन शब्दों को कुचलती हुई, मिटाती हुई आगे बढ़ जाती है। लगता है, जैसे कभी उनका अस्तित्व था ही नहीं। समय का अभियान जैसे-जैसे आगे बढ़ता जाता है, सब कुछ धुंधला पड़ता हुआ ओझल हो जाता है। हमारा मांस, हमारा लहू, हमारा शरीर, हमारी आत्मा सब तिरोहित हो जाते हैं यद्यपि ऊपरी तौर पर ऐसा लगता है, जैसे सब कुछ बिल्कुल ठीक और दुरुस्त चल रहा है। ऐसे दौर में वह छोटा सा आलंब भी कहीं दिखाई नहीं पड़ता, जिससे ध्वस्त होती हुई दुनिया को सहारा देकर फिर से खड़ा किया जा सके। तब इतिहास ऐसी दंत कथाओं, भूले बिसरे और काल्पनिक किस्से-कहानियों का एक संकलन बन कर रह जाता है, जिनमें न तो कोई सच्चाई होती है, न आधार। इस नजरिए से देखो, तब समझ में आएगा कि कितना जरूरी है, हमारा आसपास घट रही महत्वपूर्ण घटनाओं को याद रखना और अपनी स्मृतियों को बगैर किसी हस्तक्षेप के असंशोधित और सच्चे रूप में सुरक्षित व संरक्षित रखना। जब भी

कभी हम छोटे से छोटा सच भी बोलेंगे, तो इन्हीं स्मृतियों के जखीरे से हमें यथार्थता और साक्ष्य का आधार मिलेगा। सृजनात्मक लेखन के विद्यार्थियों के लिए यह बात और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। तुम में से अधिकांश लोग अपना जीवन लेखन, सत्यान्वेषण और स्मृतियों को उद्घाटित करने को समर्पित करने का सपना देखते हो। उस दिन की कल्पना करो, जब हमारी तरह के लोग भी अपनी बची खुची प्रामाणिकता और स्मृतियाँ खो देंगे, तो फिर क्या इस दुनिया में किसी प्रकार की निजी या ऐतिहासिक प्रामाणिकता और सत्य के बचे रहने की कोई उम्मीद शेष बचेगी?

चलो, मान लेते हैं कि हमारी याद्दाश्त की क्षमता और संचित स्मृतियाँ दुनिया को या इसकी सच्चाई को बदलने में किसी तरह की भूमिका नहीं निभा सकतीं, लेकिन जब हम केंद्रीकृत और नियंत्रित 'सच' के सामने खड़े होंगे तो इतना तो निष्कर्ष निकाल ही सकते हैं कि कहीं किसी चीज पर पर्दा डाला गया है। या समग्र परिदृश्य में से कुछ ऐसा जरूर है, जो छूट रहा है। हमारे अंदर कितनी भी क्षीण आवाज हो, लेकिन वह बोलेगी जरूर कि यह सच नहीं है। कोविड-19 महामारी को ही लें तो जब हालात सुधरेंगे, तब भी हमें इंसानों के, परिवारों के और हाशिए पर धकेल दिए गए समाजों के शोकाकुल क्रंदन और चीत्कार जरूर सुनाई पड़ेंगे, चाहे बाहर कितना भी कानफोड़ू उत्सव और विजयोल्लास का तमाशा किया जा रहा हो।

स्मृतियाँ दुनिया नहीं बदल सकतीं लेकिन हमें वास्तव में दिलेर बनाती हैं, हममें हौसला भरती हैं। बहुत मुमकिन है कि स्मृतियाँ हमें वास्तविकता को बदल डालने की शक्ति से लैस न कर पाएँ, लेकिन जब जब झूठ से हमारा आमना सामना होगा, हमारे दिलों में सवाल हूक बन कर जरूर उभरेंगे। जब भविष्य में हमारे सामने किसी दिन दूसरा 'ग्रेट लीप फॉरवर्ड' अभियान आकर खड़ा हो जाएगा, तो कम से कम अपने बुनियादी कॉमन सेंस के आधार पर हम समझ तो सकेंगे कि न तो रेत से लोहा बनाया जा सकता है और न ही हवा से खाद्यान्न। इसी तरह यदि 'कल्चरल रिवॉल्यूशन' का दूसरा संस्करण हमारे सामने आ खड़ा हो, तो हम इतना तो तय कर ही सकेंगे कि हमें अपने अभिभावकों को न तो जेल में डालने देना है और न ही फाँसी पर चढ़ने देना है।

प्यारे विद्यार्थियों, हम सभी आर्ट्स के विद्यार्थी हैं और अपना जीवन भाषा के माध्यम से यथार्थ और स्मृतियों से जुड़े रहकर बिताने को तत्पर हैं। अभी थोड़ी देर के लिए हम सामूहिक या राष्ट्रीय या जातीय स्मृतियों की बात छोड़ देते हैं और सिर्फ अपनी निजी स्मृतियों की बात करते हैं। इतिहास गवाह है कि हमेशा राष्ट्रीय और सामूहिक स्मृतियाँ हमारी निजी स्मृतियों के ऊपर अपनी लंबी चादर फैला देती हैं और अंततः मनमाफिक उसे बदल डालती हैं। अभी आज के इस दौर में जब कोविड-19 महामारी पूरी तरह से जीवित है और हमारी स्मृति का हिस्सा नहीं बनी है तब भी हमें विजय गीत और हर्षोल्लास के तेज ढोल नगाड़े के शोर चारों ओर सुनाई दे रहे हैं।इस पृष्ठभूमि में मुझे उम्मीद है कि आप में से हर एक नौजवान और हम सभी, जिन लोगों ने कोविड-19 का अत्यंत भयावह तांडव देखा है, उन इंसानों की तरह बर्ताव करेंगे, जिनकी स्मृतियाँ अभी धुली पुंछी नहीं हैं, जिनके बुनियादी अस्तित्व में स्मृतियों से फूटकर निकली स्मृतियाँ जीवित हैं।

निकट भविष्य में उम्मीद है कि हम यह देखेंगे कि पूरा देश कोविड-19 के ऊपर विजय के उपलक्ष्य में संगीत और गीतों के जश्न में झूम रहा है। मैं उम्मीद करूँगा कि हम उन खोखले लेखकों की तरह, बाहर जो ढोल नगाड़े बज रहे हैं, उसकी प्रतिध्वनि और भोंपू नहीं बनेंगे, बल्कि अपनी स्मृतियों को पूरी प्रामाणिकता के साथ धारण कर जीवन यापन कर रहे लोगों की तरह बर्ताव करेंगे। जब यह उत्सव अपने पूरे शबाब पर होगा, तो हम स्टेज पर भागीदार अभिनेता और वाचक बनकर अपना पार्ट नहीं अदा करेंगे और न ही दर्शकों के बीच शामिल होकर करतल ध्वनि से इस तमाशे का स्वागत करेंगे। हमें यदि स्टेज पर जाना ही पड़ा तो हम किसी कोने में डबडबाई आँखों के साथ चुपचाप उदास खड़े रहेंगे। यदि हमारी प्रतिभा, साहस और मानसिक शक्ति हमें फांग फांग जैसा लेखक नहीं बना पाती, तो कम से कम हम उन लोगों में कतई शामिल नहीं होंगे जो फांग फांग का मजाक बनाते हैं और उनकी सच्चाई पर संदेह करते हैं। विजय उत्सव मनाने के बाद यदि हम अमन चैन और समृद्धि की ऊँचाई हासिल कर भी लेते हैं, तब भी हम ऊँचे स्वर में भले ही कोविड-19 के उत्स और प्रसार के बारे में प्रश्न न कर सकें, लेकिन धीमी आवाज में या फुसफुसाहट में ही सवाल जरूर पूछेंगे। यह भी हमारी अंतरात्मा और साहस का प्रतीक है।

ऑस्चविट्ज कंसंट्रेशन कैंप के बाद कविताएँ लिखना निश्चय ही क्रूर कर्म था, लेकिन यदि हम अपने शब्दों से, अपनी बातचीत से और अपनी स्मृतियों से इस क्रूरता को पोंछ डालेंगे तो यह और भी ज्यादा बर्बर कर्म होगा, कहीं ज्यादा निर्दयतापूर्ण और भयावह। यदि हम लाई वेनलियांग जैसे व्हिसल ब्लोअर नहीं बन सकते, तो कम से कम व्हिसल सुन कर चौकन्ना हो जाने वाला इंसान तो बनना ही चाहिए। *यदि हम जोर से चिल्ला कर अपनी बात नहीं कह सकते तो कम से कम फुसफुसा कर तो जरूर कहें। यदि हम फुसफुसा कर भी अपनी बात नहीं कह सकते तो कम से कम चुपचाप खड़े रहने वाले ऐसे इंसान तो जरूर बनें, जिन्होंने अपनी स्मृतियाँ बचा कर रखी हैं।* कोविड-19 की शुरुआत, इसके नरसंहार और फैलाव के अपने अनुभवों को अपने अंदर संजोकर रखें और जब चारों ओर सड़क, चौराहों पर इस महामारी को पराजित कर देने का विजय पर्व मनाया जाए,समवेत स्वर में गीत गाते हुए मार्च किया जाए तो चुपचाप, सिर झुका कर सड़क किनारे खड़े हो जायं। *हम दरअसल वे लोग हैं, जिनके मनों में अनगिनत कब्रें खुदी हुई हैं, मौतों की हृदय विदारक स्मृतियाँ अंकित हैं। हम ये तमाम बातें भूले नहीं हैं और एक न एक दिन ऐसा आएगा,* जिसमें हम ये तमाम स्मृतियाँ भविष्य की पीढ़ी को विरासत के रूप में सौंपकर प्रयाण कर जाएँगे। ❑

# कोरोना महामारी
# श्रमिक चेतना के उन्मेष का समय

❑ प्रेम सिंह

तालाबंदी के डेढ़ महीना से ऊपर हो जाने के बाद भी देश-व्यापी स्तर पर मेहनतकश मजदूरों की दुर्दशा का सिलसिला थमा नहीं है. मजदूरों की दुर्दशा के ये साक्षात दृश्य प्रमाण हैं कि देश की '5 ट्रिलियन की अर्थव्यवस्था' में केवल उनका पसीना ही शामिल है, वे खुद इस अर्थव्यवस्था के हिस्सेदार नहीं हैं. असंगठित-संगठित क्षेत्र के इन मजदूरों के अलावा सीमांत किसानों, अर्द्ध-पूर्ण बेरोजगारों की भी लगभग वही स्थिति है. उन्हें तालाबंदी ने सड़कों पर तो नहीं फेंका, लेकिन रोजी-रोटी के संकट में डाल दिया है. सबसे ज्यादा गौर करने की बात यह है कि देश की अधिकांश आबादी की इस दुर्दशा से सरकार को कोई बेचैनी नहीं है. डर का तो सवाल ही पैदा नहीं होता. जबकि देश में लोकतांत्रिक प्रणाली है. यानी सरकार अथवा सत्तारूढ़ पार्टी को कल चुनाव में जाना है. इस चिंताजनक परिघटना का कारण चौतरफा फैले मजदूरों की दुर्दशा के परिदृश्य में ही आसानी से पहचाना जा सकता है.

1991 वह अवसर था जब मजदूर आंदोलन को नए चरण में प्रवेश करना चाहिए था, लेकिन राजनीतिक पार्टियों से जुड़े अथवा स्वतंत्र मजदूर संगठनों के नेतृत्व ने यह जिम्मेदारी नहीं उठाई. सरकारें 'रिफॉर्म्स' के नाम पर एक के बाद एक श्रम कानूनों को कारपोरेट घरानों के पक्ष में बदलती रहीं और मजदूर संगठन कुछ रस्मी प्रतिरोध करके बैठ जाते रहे.

तालाबंदी के पहले यह जरूरी था कि एक समुचित आर्थिक पैकेज के तहत मजदूरों को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती. सरकार ने यह नहीं किया क्योंकि उसकी प्राथमिकता मजदूर नहीं, पूंजीपति हैं. सरकार ने महामारी के बहाने कारपोरेटपरस्त नवउदारवादी आर्थिक नीतियों को और मजबूती से लागू करने के लिए कमर कस ली है. उदहारण के लिए सूक्ष्म, लघु और माध्यम उद्यम मंत्री नितिन गडकरी कह चुके हैं कि महामारी के बावजूद प्रधानमंत्री का भारत को आर्थिक महाशक्ति बनाने का सपना साकार होगा. एक टीवी कार्यक्रम में अंबानी बंधुओं में से एक ने कहा कि विजनरी प्रधानमंत्री के रहते कोरोना महामारी के बावजूद अर्थव्यवस्था मजबूत होगी. प्रधानमंत्री और कैबिनेट यह फैसला कर चुके हैं कि अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए विदेशी और स्थानीय निवेश पर और ज्यादा जोर दिया जाएगा. नवउदारवाद के रिसोर्स पर्सन दावे कर रहे हैं कि कोरोना महामारी के बाद बनने वाली नई विश्व-व्यवस्था में भारत की अग्रणी भूमिका होगी!

यह सब करने के लिए सरकार ने सबसे पहले और सबसे ज्यादा मजदूरों पर निशाना साधा है. उसने श्रम कानूनों को और ज्यादा 'सरल' बनाने की कवायद शुरू कर दी है. मुख्यमंत्रियों के साथ हुई एक वीडियो चर्चा में प्रधानमंत्री ने राजस्थान के मुख्यमंत्री अशोक गहलोत के मजदूरों से 8 घंटे के बजाय 12 घंटे काम लेने के सुझाव की प्रशसा करते हुए उसे 'सुधारों' की दिशा में महत्वपूर्ण कदम बताया. श्रम कानून समवर्ती सूची में आते हैं. गहलोत के सुझाव की प्रशंसा करके प्रधानमंत्री ने राज्यों को श्रम कानून कमजोर करने की अपनी मंशा संप्रेषित कर दी थी. उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री अध्यादेश के ज़रिये न्यूनतम वेतन अधिनियम सहित, लगभग सभी श्रम कानूनों को अगले तीन महीने के लिए स्थगित करने की घोषणा कर चुके हैं. मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, ओडिशा, पंजाब, महाराष्ट्र की सरकारों ने भी किसी न किसी रूप में श्रम कानूनों को ढीला करने का फैसला किया है. आगे अन्य राज्य भी ऐसा कर सकते हैं. यानी अर्थव्यवस्था देश के शासक वर्ग और कारपोरेट घरानों के बीच का मामला है, मजदूर उसमें कहीं नहीं आते! यह जरूर है कि मुख्य विपक्षी दल कांग्रेस ने पूरे कोरोना संकट के दौर में जो सुझाव सरकार को दिए हैं, उनसे यह स्पष्ट हुआ है कि उसका नवउदारवादी अर्थव्यवस्था को मानवीय चेहरा प्रदान करने का विश्वास अभी भी बरकरार है.

सरकार ने अपना प्रतिक्रांतिकारी चरित्र खोल कर सामने रख दिया है. वह उसी अर्थव्यवस्था की मजबूती का उद्यम कर रही है, जिसके चलते कई लाख किसान आत्महत्या कर चुके हैं और 50 करोड़ मजदूर सस्ते श्रम में तब्दील हो गए हैं. सरकार जानती है कि उसके सामने कोई वास्तविक प्रतिरोध नहीं है. मजदूर संगठनों और मजदूर नेताओं ने श्रम कानूनों में बदलाव अथवा उन्हें निरस्त करने के फैसलों का विरोध किया है. राष्ट्रीय स्तर के 10 मजदूर संगठनों ने तालाबंदी खुलने पर विरोध प्रदर्शन करने का ऐलान भी किया है. यह सब जरूरी है. लेकिन साथ ही यह भी जरूरी है कि मजदूरों की दुर्दशा के मद्देनज़र असली सवाल को चिंता और चर्चा के केंद्र में लाया जाए. असली सवाल उन आर्थिक नीतियों का है, जिनके चलते देश भर के मजदूर इस दुर्दशा को प्राप्त हुए हैं. नवउदारवाद के समर्थक कुछ धर्मनिरपेक्ष बुद्धिजीवी कह रहे हैं कि राज्य सरकारों ने जो किया है, वह 'रिफॉर्म्स' का सही अर्थ नहीं है. वे भ्रम पैदा करना चाहते हैं. नवउदारवाद में 'रिफॉर्म्स' का शुरुआत से ही एक निश्चित पारिभाषिक अर्थ रहा है. उसी अर्थ के तहत 1991 के बाद से श्रम कानूनों की ताकत को मजदूर हितों के खिलाफ और कारपोरेट हितों के पक्ष में कमजोर किया जाता रहा है.

राजनीति को बदले बिना अर्थव्यवस्था नहीं बदली जा सकती. कोरोना महामारी को सरकार ने अगर अवसर बनाया है, तो मौजूदा निगम पूंजीवाद के वास्तविक विरोधी भी इसे एक अवसर बना सकते हैं. मजदूरों, किसानों, अर्द्ध-पूर्ण बेरोजगारों का महामारी काल का अनुभव आसानी से भुलाने वाला नहीं होगा. उनके इस अनुभव का राजनीतिकरण होगा तो एक नई श्रमिक चेतना का उन्मेष होगा और कारपोरेट राजनीति के बरक्स वैकल्पिक राजनीति की ज़मीन बनेगी. ❑

# क्या प्रवासी मजदूर देश के नागरिक नहीं हैं?

❑ अरविन्द अंजुम

आम जीवन में प्रचलित तरीका तो यही है कि कोई छोटा या बड़ा कदम उठाने से पहले उससे संबंधित सभी पक्षों पर समग्र रूप से विचार कर लिया जाय। परंतु विगत वर्षों में बड़े कदम एक 'सरप्राइज' की तरह उठाये गये हैं और चूंकि ये बड़े निर्णय होते हैं, अतः इनका प्रभाव भी काफी व्यापक होता है। नोटबंदी की तरह ही 24 मार्च 2020 को तालाबंदी की घोषणा अचानक ही कर दी गयी, जबकि पड़ोसी बंग्लादेश में इसकी सूचना 5 दिन पहले दी गयी थी। विशाल जनसंख्या वाला देश होने के कारण उचित तैयारी करने का समय दिया जाना जरूरी था। यह सरकार व शासन के लिए उपयोगी होता और आम लोगों के लिए भी। तालाबंदी की घोषणा होते ही अफरा-तफरी मच गयी। लोग राशन की दूकानों की ओर दौड़े और दो-तीन महीनों का राशन खरीद लिया। लेकिन यह अस्त-व्यस्तता का सिलसिला यहीं तक नहीं रुका।

हम सभी जानते हैं कि करोड़ों प्रवासी मजदूर देश के विभिन्न भागों में कार्यरत हैं; लाखों विद्यार्थी विभिन्न संस्थाओं में अध्ययनरत हैं; बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि के मरीज चिकित्सा के लिए दक्षिण, मुम्बई, दिल्ली आदि शहरों में निरंतर जाते रहते हैं। इन सबकी सुरक्षित घर वापसी की कोई योजना प्रारम्भ में नजर नहीं आयी। सिर्फ विदेशों में फंसे लोगों को हवाई जहाज भेजकर वापस लाया गया। जब लॉकडाउन की अवधि को लेकर थोड़ा संशय बढ़ा तो कोटा में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को कई राज्यों ने बस भेजकर वापस बुला लिया। उत्तर प्रदेश में प्रवासी मजदूरों से किराया वसूलते हुए सांकेतिक सुविधा दी गयी। यह एक जरूरी एवं मानवीय कदम था। पर झारखंड जैसे अपवाद को छोड़कर, प्रवासी मजदूरों के लिए सरकारों की यह सदाशयता अन्य कहीं नजर नहीं आयी।

प्रवासी मजदूरों की सुरक्षित घर वापसी के इंतजाम की तो बात ही जानें दें, जो प्रवासी मजदूर साधनों के अभाव में पैदल ही निकल गये, उनके साथ जगह-जगह अमानवीय बर्ताव किये गये, उनपर लाठियां बरसायी गयीं, कैदखाने से भी बदतर स्थिति में क्वारेंटाइन केन्द्रों में रखा गया। सूरत, अहमदाबाद, मुम्बई, दिल्ली, हैदराबाद आदि शहरों में त्रस्त और पस्त मजदूर सड़कों पर उतरने लगे। जब दबाव ज्यादा बढ़ा तो सरकार ने पहले बस, बाद में रेल से मजदूरों की वापसी की घोषणा की। यह भी कहा गया कि मजदूरों को किराया नहीं देना होगा। पर किराये का खेल भी लंबा चला। केन्द्र ने 85:15 का फार्मूला लागू कर अपनी जिम्मेवारी जमा-खर्ची में डाल दिया और वास्तविक भार राज्य सरकारों को या मजदूरों को स्वयं वहन करना पड़ा। यह कहानी अब जग जाहिर है।

यहां, इस बात को समझ लेना आवश्यक है कि इन मजदूरों को अपने देश, अपने घर वापस भेजने में इतनी आनाकानी और व्यवधान क्यों डाले गये। इसका उत्तर एक झटके में कर्नाटक सरकार की ओर से मिल गया। वहां की बिल्डर लॉबी ने मुख्यमंत्री से मिलकर अनुरोध किया कि ये मजदूर अगर चले गये तो उनका निर्माण कार्य ठप्प हो जायेगा और उनको भारी घाटा होगा, अतः ट्रेनों का परिचालन रद्द किया जाय और ऐसा किया भी गया। हालांकि चारों तरफ से भारी दबाव को देखते हुए ट्रेनों की रवानगी पुनः शुरू की गयी। लेकिन मजदूरों की भारी संख्या को देखते हुए ट्रेनों की संख्या काफी कम है। इसलिए आज भी मजदूर पैदल अपने घरों की ओर लौट रहे हैं। सरकार एवं उसकी घोषणाओं से उनका भरोसा टूट गया है। अब वे सब खुद के बूते पर जिन्दगी की जद्दोजहद में कूद पड़े हैं।

दैनिक भास्कर (9 मई 2020) की एक खबर के अनुसार देश वापसी के क्रम में अब तक 73 मजदूरों की रास्ते में ही मौत हो चुकी है। औरंगाबाद, महाराष्ट्र की रेल पटरियों पर दर्दनाक हादसा इनके अपार कष्टों की कहानी कहता है। सरकार एवं शासन के व्यवहार इस प्रकार के हैं, मानो ये मजदूर इस देश के नागरिक ही नहीं हैं, उनका कोई संवैधानिक अधिकार ही नहीं है, वे इस व्यवस्था के उच्छिष्ट हैं।

भारत के इतिहास में पलायन या प्रति पलायन की यह पहली घटना नहीं है। देश के विभाजन के समय भी लाखों लोगों का पलायन हुआ था और वे शरणार्थी बनकर पूर्वी एवं पश्चिमी पाकिस्तान से यहां आये थे। उस वक्त की सरकार एवं शासन ने स्थिति का सामना किस प्रकार किया था, यह जानना काफी प्रेरणादायक है।

पश्चिमी पंजाब से बहुत सारे सिख एवं हिन्दुओं को भारत सरकार ने कुरुक्षेत्र में एक अस्थाई शरणार्थी शिविर में रखा था। इनके इंतजाम के लिए मैदान में तंबुओं का एक विशाल शहर खड़ा हो गया। ये शिविर शुरू में कुल एक लाख लोगों के लिए बनाये गये थे, लेकिन उससे तीन गुना ज्यादा लोगों को रखा गया था। एक अमेरिकन पर्यवेक्षक ने लिखा कि 'सेना नये शरणार्थियों के आने से पहले ही चमत्कारिक रूप से तंबू खड़े करते रही।' कुरुक्षेत्र के नये वाशिंदों को खिलाने के लिए प्रतिदिन सौ टन आटे और भारी मात्रा में नमक, चावल, दाल, चीनी, कैरोसीन की जरूरत पड़ती थी। सरकार की तरफ से मुफ्त में इन चीजों की व्यवस्था की गयी। शरणार्थियों को मानसिक तनाव से उबारने के लिए हास्य-व्यंग्य की फिल्में दिखायी जाती थी। (संदर्भ - भारत : गांधी के बाद, लेखक-रामचंद्र गुहा)

ये सारे इंतजाम उस वक्त किये गये थे, जब देश भयानक दौर और अस्त-व्यस्तता से गुजर रहा था। चारों तरफ कत्लेआम मचा था। लोगों के घर-बार लूट लिये गये थे। सरकार ने अभी-अभी कार्यभार संभाला था और संसाधन अत्यंत सीमित और आज की तुलना में नगण्य थे। फिर भी बेहतर व्यवस्था हुई। ऐसा कैसे, किस प्रकार संभव हुआ? उस वक्त के राजनैतिक, प्रशासनिक एवं सामाजिक नेतृत्व की भूमिका का चित्रण करते हुए एक विदेशी वास्तुविद अलबर्ट मेयर ने लिखा कि ''जितनी बड़ी संख्या और जितने प्रकार के लोगों को मैंने देखा है, उनकी योग्यता, उनका दृष्टिकोण, उनकी ऊर्जा, उनका समर्पण, योजनाओं को लेकर उनका पागलपन, उम्मीदें एवं अनिश्चितता, फिर भी उनमें पायी जाने वाली निश्चल शांति और जिम्मेदारियों को धारण करने की क्षमता....वाकई किसी देश के जन्म के समय वहां उपस्थित होना एक अद्भुत अहसास है।''

क्या आज की सरकार एवं प्रशासन के बारे में हम ऐसा महसूस कर सकते हैं? काश ऐसा होता! ❑

# अभूतपूर्व संकट में राष्ट्रीय सहमति और साझा मंच चाहिए

## विप्लव का इंतज़ार न करें

❑ रामदत्त त्रिपाठी

**को**रोना वायरस की महामारी के इस संकट में पिछले तीन महीने में भारत में अच्छी- बुरी बहुत सी बातें उजागर हुई हैं, लेकिन सबसे हैरानी वाली बात मुझे यह लगती है कि हमारे सिस्टम में देश के आम आदमी के रहन- सहन, उसकी समस्याओं और ज़रूरतों की न तो समझ है और न ही ये सब समझने की उसकी इच्छा है. इच्छा के लिए दिल में संवेदना चाहिए, जिसका अभाव स्पष्ट दिखता है.दूसरा, न तो राजनीतिक दलों में और न सरकार में जवाबदेही का कोई सिस्टम कारगर रह गया है.

सिस्टम से मेरा अभिप्राय समूचे स्टेट के सिस्टम से है, जिसमें विधायिका, राजनीतिक कार्यपालिका, अफ़सरशाही और अदालत सब शामिल हैं. सिस्टम या व्यवस्था में पक्ष विपक्ष सभी शामिल हैं. सबसे बड़ी वजह यह कि ये सब अपनी रोज़मर्रा की जिन्दगी में आम आदमी और समाज से दूर रहते हैं. वह अभेद्य सुरक्षा के घेरे में रहते हैं और कोई नागरिक उनसे बराबरी से आँख मिलाकर बात नहीं कर सकता. वे न पैदल चलते हैं, न साइकिल से और न पब्लिक ट्रांसपोर्ट से, न ही किसी पार्क में टहलते मिलते हैं. इन दिनों ट्विटर पर एक चित्र वायरल हो रहा है, जिसमें एक नागरिक लंदन के पार्क में प्रधानमंत्री बोरिस जॉनसन को अपने मन की सुना रहा है और वह डर नहीं महसूस करता. यहाँ जन मन की बात सुनने की इच्छा ही नहीं है. आप यहाँ शायद ग्राम प्रधान से भी इस तरह बहस नहीं कर सकते. समाज यह अपेक्षा भी नहीं करता.

व्यवस्था को इस बात का एहसास ही नही था कि कितने करोड़ लोग अपने घर गाँव से पाँच सौ से लेकर दो हज़ार किलोमीटर दूर रोज़ी रोटी कमाने जाते हैं. और वे किन परिस्थितियों में काम करते हैं. इनमें से ज़्यादातर के पास न नियुक्ति पत्र होता है, न कोई जॉब सेक्योरिटी. बहुत से लोग अपना खुद का छोटा मोटा कारोबार कर लेते हैं. या फिर स्ट्रीट वेंडर वग़ैरह हैं. किराया देने की क्षमता न होने से एक झुग्गी या कोठरी में कई लोग साझे में रहते और सोते हैं. पानी के लिए पम्प पर लाइन लगाते है. और शौच जाने के लिए भी उन्हें अपनी बारी का इंतज़ार करना पड़ता है. ये लोग जो आठ, दस या पंद्रह, बीस हज़ार कमाते हैं, उसका एक हिस्सा गाँव में अपने माँ बाप या पत्नी और बच्चों को गुजर बसर के लिए भेज देते हैं. कोरोना लॉक डाउन में जल्दी ही पैसा खतम हो गया. भूखे मरने के अलावा इस बात का भी डर कि वे वहाँ के माहौल में शारीरिक दूरी नहीं बना सकते और इसलिए वहाँ बीमारी का शिकार होने का ख़तरा अपने गाँव घर से कहीं ज्यादा है. ऐसे में जान है तो जहान है का मतलब उनके लिए हर हाल में अपने घर पहुँचना है.

उन्होंने हफ्तों भरोसा किया कि सरकार रेल, बस चलाएगी और वे घर जा सकेंगे. मेरे फ़ोन पर हर रोज़ देश भर से लोगों के फ़ोन आते हैं. वे कहते हैं कि खाने को कुछ नहीं है. वे सिर्फ यह जानना चाहते हैं कि रेल, बस कब खुलेंगी. इन लोगों के आनलाइन पंजीकरण की जो व्यवस्था की गयी, उसमें स्मार्ट फ़ोन, डेटा और अंग्रेज़ी का ज्ञान आवश्यक है. ऐसी अपेक्षा करना भी ग़लत है. यही सिस्टम की नासमझी दर्शाता है.

पार्टी मेम्बर बनाने के लिए एक मिस काल पर्याप्त होती है, संकट में फँसे लोगों के लिए स्मार्ट फ़ोन पर अंग्रेज़ी का फार्म भरवाने का मक़सद समझ नहीं आता, सिवा इसके कि सबका लेख जोखा रखकर बाद में चुनाव के समय एहसान भुनाया जाए. प्रवासी मज़दूरों के अलावा लाखों ऐसे लोग हैं, जो इलाज के लिए दिल्ली, मुंबई गए थे, या बारात लेकर गए थे और वे सब फँसे हैं. उन्हें अपनी गाड़ियों से वापस आने देने में क्या परेशानी थी? वे दूसरे शहर में कहाँ रहें, क्या खाएँ?

महीने भर में लोगों का धैर्य जवाब दे जाना समझा जा सकता है. अब वे सड़क मार्ग से जाने लगे तो बजाय रास्ते में उनके लिए दाना पानी का इंतज़ाम करने के, पुलिस डंडे मारने लगी. तब वे पथरीली रेल पटरियों पर चलने लगे और औरंगाबाद में पलक झपने पर कुचल गए. ग़रीबी की निशानी के तौर पर सूखी रोटियाँ पटरियों पर बिखरी मिलीं. शायद ही कोई होगा, जिसकी आत्मा को इस हादसे से तकलीफ़ न पहुँची हो. अब तो हमें स्वीकार कर लेना चाहिए कि देश में कम से कम पचास फ़ीसदी गरीब हैं. लेकिन योजनाएँ बनाने वालों की प्राथमिकताएँ कुछ और हैं. योजनाएँ बनाने वालों के लिए बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ और दिल्ली में नयी संसद पर बीस पचीस हज़ार करोड़ का बजट आवंटित करने पर ग्लानि नहीं होती.

सिस्टम को यह तो पता होना चाहिए था कि महामारी अथवा पब्लिक हेल्थ की समस्या में सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली ही काम आएगी. मगर निहित स्वार्थ के लिए वहाँ केवल बिल्डिंग बनाने और ग़ैरज़रूरी मशीनें ख़रीदने पर बजट खर्च किया गया. उदाहरण के लिए हर जिला अस्पताल में दो डायलिसिस मशीनें भेजी जा रही हैं. पर डाक्टर, नर्स और टेक्नीशियन नहीं. ख़रीद की केंद्रीकृत व्यवस्था का ही परिणाम था कि लखनऊ किंग जार्ज मेडिकल कालेज और एसजीपीजीआई अस्पताल में पी पी ई तो दूर, मास्क तक नहीं थे, और एक नर्स को ये बात चिल्लाकर कहनी पड़ी. इसी व्यवस्था में महँगे दाम पर ख़राब या अनुपयोगी टेस्ट किट्स ख़रीदी गयीं.

यहाँ मैं उन तमाम बातों की चर्चा नहीं करूँगा कि जब वियतनाम, ताइवान और सिंगापुर जैसे देश कोरोना को कंट्रोल करने में सारा ज़ोर लगाए थे, हमारे यहाँ अमरीकी राष्ट्रपति को अहमदाबाद और आगरा घुमाने की क्या ज़रूरत थी? उनके साथ जो तमाम लोग आए थे, उनमें भी बहुतेरे संक्रमण का शिकार रहे होंगे. अगर जनवरी अंत में चीन से सूचना आने के बाद हवाई यात्रियों को एयरपोर्ट पर रोक कर पंद्रह दिन का एकांत वास करा दिया

जाता, तो क्या वायरस फैलने से रोकने में मदद नहीं मिलती? कोरोना के चलते बाकी रोगी इलाज के लिए मारे मारे मारे घूम रहे हैं. सरकारी अस्पताल वाले भी उन्हें नहीं देखते. प्राइवेट अस्पताल बंद ही हैं.

जो नहीं हुआ उसे छोड़िए. जो हो रहा है उस पर गौर कीजिए. जब थूकने से कोरोना वायरस फैलता है तो पान मसाला की बिक्री खोलने का निर्णय क्या जनता के हित में है? जब सड़क पर अकेले चलने वाले को डंडे पड़ते हैं, तो शराब की दुकानों पर लम्बी लाइनें क्यों लगवायी जा रही हैं? क्या यह सब केवल सरकार का राजस्व बढ़ाने के लिए हुआ या किसी का दबाव भी है?

श्रम क़ानून लागू करने की मशीनरी पहले से ही लुंज-पुंज थी तो फिर श्रम क़ानूनों को निलम्बित करने की क्या आवश्यकता थी? किन डाक्टरों की सलाह पर काम के घंटे आठ से बढ़कर बारह किए गए? यह दर्शाता है कि निर्णय लेने के पीछे किस वर्ग का हित साधा जा रहा है. शायद अभी यह समझ नहीं है कि उद्योग, व्यापार चलाने और बढ़ाने के लिए पूँजी से कम महत्व श्रम और तकनीकी विकसित करने वाले का नहीं है.

देश में जो हालात बन रहे हैं और मुंबई, सूरत, दिल्ली, लुधियाना जैसे बड़े शहरों से कामगार डर के मारे भाग कर गाँव आ रहे हैं, आश्चर्य नहीं होगा, अगर अगले एक महीने में कोरोना बीमारी का प्रसार ग्रामीण क्षेत्रों में भी हो जाए. इसलिए अभी सारा ज़ोर निचले स्तर तक सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएँ मज़बूत करने पर होना चाहिए. शहर और देहात में जो करोड़ों लोग बेरोज़गार हो रहे हैं, जिनके धंधे बंद हो गए हैं, उनके लिए रोज़गार पैदा करना सबसे बड़ी चुनौती है.

उद्योग, कारख़ाने, बड़े व्यापार छोड़िए, केवल शादियों से लगभग पचास हज़ार करोड़ का कारोबार होता है, जिसमें कैटरिंग, तम्बू, कनात , कपड़े, ज़ेवर और बैंड बाजा आदि में लाखों लोग जीविका पाते हैं. यह सब ठप्प है. बाज़ार बंद होने से तमाम वस्तुओं की खपत नही हो रही है. जैसे लखनऊ में चिकन के कपड़े, साड़ियाँ, जूते, प्रसाधन सामग्री आदि आदि बहुत कुछ. चलने वाले संगठित उद्योग और सरकार में भी वेतन भत्तों में कटौती तय है. इस तरह बेरोज़गारी और आर्थिक मंदी अब एक बड़ी चुनौती बनकर आने वाली है, जिसका सिलसिला नोटबंदी से शुरू हुआ था. वकील, डाक्टर, आर्किटेक्ट और न जाने कितने प्रोफेशनल हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं. रेस्टोरेन्ट, होटल, पर्यटन, सिनेमा, मनोरंजन, जिम, ब्यूटी पार्लर, हेयर कटिंग सैलून जाने कितने क्षेत्र अभी लंबी अवधि के लिए प्रभावित रहेंगे.

आर्थिक मंदी से मिडिल क्लास को भी झटका लगा है. शहरों में जिन लोगों ने अपनी जमा पूँजी से किराए पर चलाने के लिए घर बनवाए, उनकी आमदनी के ज़रिए होंगे. जो लोग पी एफ़ ग्रेच्युटी की एफ़डी से ब्याज पर खर्च चलाते हैं, उनका क्या होगा? या जिनकी पूँजी शेयर बाज़ार में लगी है, वे कब तक इंतज़ार करें. सदी की सबसे बड़ी आर्थिक मंदी ने दस्तक दे दिया है, जिससे कोई अछूता नहीं रहेगा. न छोटा न बड़ा, न गरीब न अमीर. जब आर्थिक हालात ख़राब होंगे, तो अपराध बढ़ सकते हैं. इस परिस्थिति में सामाजिक असंतोष बढ़ना भी सामान्य बात है. इसलिए अपराध नियंत्रण, क़ानून व्यवस्था और लोक व्यवस्था के लिए भी आने वाले दिन कठिन होंगे.

**विकेंद्रीकरण समय की ज़रूरत**

मेरा मानना है कि विकास और उत्पादन का पूँजी और मशीन प्रधान केंद्रीकृत माडल फ्लॉप हो चुका है. शहरीकरण से अन्य अनेक समस्याएँ पैदा हुईं हैं और मनुष्य की मनुष्य या पड़ोसी के प्रति हमदर्दी की भावना क्षीण हो गयी है. कोरोना ने और भी दूरी बढा दी है. अब हमें उत्पादन, वितरण और शासन तीनों का विकेंद्रीकरण करके रोज़मर्रा की ज़रूरतों के लिए शहर और गाँव को स्थानीय स्तर पर आत्मनिर्भर बनाना ही होगा.

बड़े शहरों के बजाय छोटे क़स्बों को रोज़गार, उद्योग व्यापार का केंद्र बनाना होगा, जिससे अग़ल बग़ल के गाँवों को जोड़ा जा सके. छोटी-छोटी ग्रामसभाओं का पुनर्गठन कर (न्यूनतम पाँच हज़ार की आबादी) व्यावहारिक ढाँचा बनाना होगा. इन ग्रामसभाओं के पास अपना सचिवालय हो, जिसमें प्रशासनिक, वित्तीय और तकनीकी कर्मचारी हों. प्राथमिक शिक्षा, प्राथमिक स्वास्थ्य और स्थानीय रोज़गार प्रबंधन इनके अधीन हों.

भारत को शिक्षित, अशिक्षित और प्रोफेशनल एजुकेशन वाले यानि सभी लोगों को उनके निवास के आस पास रोज़गार पर ध्यान देना होगा. गाँवों में खेती, बाग़वानी, पशु पालन, कपड़ा एवं अन्य कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देना होगा. अब कामगार जल्दी शहर जाने के मूड में नहीं है. शहरी शिक्षित बेरोज़गारों के लिए भी रोज़गार का प्रबंध करना होगा. वहाँ भी विकेंद्रित कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देना होगा. बड़े शहरों में नगर निकायों का भी मोहल्ला स्तर पर विकेंद्रीकरण करना होगा. नए नज़रिए और नए सिरे से राष्ट्र निर्माण का व्यापक कार्यक्रम बनाकर अभियान चलाना होगा.

आज हम दवा, मास्क और छोटी-मोटी हर ज़रूरत के लिए चीन पर निर्भर हैं. लालफ़ीताशाही और करप्शन के कारण भारत के अधिकांश उद्योगपतियों ने अपने कारख़ाने या तो चीन, वियतनाम और दूसरी जगहों पर लगा लिए हैं, या चीन से सस्ता माल मंगाकर बेचते हैं. विदेशी पूँजी के नाम पर फ़र्जीवाड़ा करने के बजाय सबसे पहले ऐसा माहौल दिया जाए कि वे अपने कारख़ाने भारत में लगाएँ और जो सामान भारत में बन सकता है, उसका आयात विदेश से न कराएँ.

**राष्ट्रीय सहमति और साझा मंच की ज़रूरत**

लेकिन यह कार्यक्रम कौन बनाएगा? बनाने वालों को क्या ज़मीनी हक़ीक़त पता है? पता कैसे होगी? सारे राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दल हाईकमान या व्यक्ति केंद्रित हो गए हैं. सबका रहन-सहन, जीवन शैली पाँच सितारा हो गयी है और सभी ज़मीन से कटे हुए हैं. बाक़ी पार्टी पदाधिकारी केवल खानापूरी के लिए हैं. उनसे भी ज़मीनी हालात कोई नहीं पूछता. विधायकों को तो छोड़िए, महत्वपूर्ण नीतियों, कार्यक्रमों और निर्णयों में मंत्रियों की भी राय नहीं ली जाती. आज हाईकमान की परिक्रमा करने वाले और पैसे वाले ही टिकट पाते हैं, जिनके समाज सेवा के बजाय अपने निहित स्वार्थ हैं.

बहुत सारी समस्याओं की जड़ हमारी सड़ी हुई राजनीतिक दल प्रणाली और चुनाव में बड़े पैमाने पर खर्च है. नेता मोटा चंदा देने वालों के चंगुल में फँसे हैं. नौकरशाही प्रायः ठकुरसुहाती या जी हुज़ूरी में लगी रहती है. जो

असहमति दर्ज करेंगे या अपना दिमाग़ लगाएँगे, उनके लिए दाएँ बाएँ बहुत से पद पहले से सृजित किए गए हैं. इस समय डर कुछ ज्यादा है. खुलकर राय देने में जोखिम है.

**विप्लव का इंतज़ार न करें**

हमारे देश में केरल से लेकर पंजाब और तमिलनाडु से लेकर राजस्थान तक आज एक, दो नहीं, कई सत्ताधारी दल हैं. सब अपने को छोटे मोटे राजा या महारानी समझते हैं और वैसा ही व्यवहार करते हैं.

ज़रूरत है कि आने वाले दिनों के लिए राष्ट्रीय आम सहमति से कार्यक्रम बनें. जब आज़ादी आयी और पंडित नेहरू और सरदार पटेल ने अपनी कैबिनेट के लिए कांग्रेस के ग्यारह नेताओं की सूची बनायी तो महात्मा गांधी ने उसे अस्वीकार कर दिया. कहा कि आज़ादी कांग्रेस को नहीं, भारत को मिली है, इसलिए आधे मंत्री ग़ैर कांग्रेसी हों. तब नेहरू के धुर विरोधी डा अम्बेडकर और श्यामा प्रसाद मुखर्जी जैसे लोग मंत्रिमंडल में रखे गए, जो न केवल विशेषज्ञ थे, बल्कि तपे तपाए लोग थे। जो खुलकर बहस करने के बाद निर्णय लेते थे. राजनीतिक दलों में भी राजनीतिक आर्थिक प्रस्तावों पर खुलकर बहस होती थी. नीचे से ऊपर तक पदाधिकारियों का चुनाव होता था. उनका अपना व्यक्तित्व होता था और वे खुलकर बोल सकते थे. मनोनीत पदाधिकारी और मंत्री तो 'येस सर' ही कहेंगे .

संविधान रक्षा की शपथ लेने वाली नौकरशाही को भी फ़ाइल पर अपनी राय प्रकट करने की आज़ादी थी. अभी पचीस तीस साल पहले तक भी यह चल रहा था, क्षत्रपों के उभरने से पहले तक, जो खुद को सर्वज्ञ मानते हैं. अब पहले से बता दिया जाता है कि अमुक प्रस्ताव लाओ या यह टिप्पणी लिखो. यहाँ तक कि शासन के न्याय और विधि विभाग भी यही करने लगे हैं.

आज देश में कांग्रेस सिस्टम ख़त्म हो चुका है. अनेक सत्ताधारी दल हैं. अनेक विपक्षी दल हैं.एक पार्टी और एक विचारधारा से संकट की इस घड़ी में देश का नव निर्माण नहीं हो सकता. महत्वपूर्ण निर्णयों में सभी पार्टियों, मुख्यमंत्रियों और विपक्षी दलों के नेताओं की भागीदारी होनी ही चाहिए. ❑

## Y2K

# 21वीं सदी का पहला ग्लोबल झूठ था

❑ रवीश कुमार

भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 12 मई के अपने राष्ट्र के नाम संबोधन में कहा कि इस सदी की शुरूआत में दुनिया में Y2K संकट आया था, तब भारत के इंजीनियरों ने उसे सुलझाया था। प्रधानमंत्री ने जाने-अनजाने में कोरोना संकट की वैश्विकता की तुलना Y2K जैसे एक बनावटी संकट से कर दी। एक ऐसे संकट से, जिसके बारे में बाद में पता चला कि वह था ही नहीं। जिन्होंने इसके बारे में सुना होगा, वह इसकी पूरी कहानी भूल चुके होंगे और जो 1 जनवरी 2000 के बाद पैदा हुए, मुमकिन है, उन्हें कहानी पता ही न हो। Y2K का मतलब YEAR 2000 है, जिसे संक्षेप Y2K लिखा गया।

Y2K इस सदी का पहला ग्लोबल फेक न्यूज़ था, जिसे मीडिया के बड़े-बड़े प्लेटफार्म्स ने गढ़ने में भूमिका निभाई, जिसकी चपेट में आकर सरकारों ने करीब 600 अरब डॉलर से अधिक की रकम लुटा दी। इस राशि को लेकर भी अलग अलग पत्रकारों ने अपने हिसाब से लिखा। किसी ने 800 अरब डॉलर लिखा तो किसी ने 400 अरब डॉलर लिख दिया। तब फेक न्यूज़ कहने का चलन नहीं था। HOAX यानि अफवाह कहा जाता था। Y2K संकट पर ब्रिटेन के पत्रकार निक डेविस ने एक बेहद अच्छी शोधपरक किताब लिखी है, जिसका नाम है फ्लैट अर्थ न्यूज़ (FLAT EARTH NEWS), यह किताब 2008 में आई थी।

Y2K को मिलेनिम बग कहा गया। अफवाहें फैलाई गईं और फैलती चली गईं कि इस मिलेनियम बग के कारण 31 दिसंबर 2000 की रात 12 बजे कंप्यूटर की गणना शून्य में बदल जाएगी और फिर दुनिया में कंप्यूटर से चलने वाली चीज़ें अनियंत्रित हो जाएंगी। अस्पताल में मरीज़ मर जाएंगे। बिजली घर ठप्प हो जाएंगे। परमाणु घर उजड़ जाएंगे। आसमान में उड़ते विमानों का एयर ट्रैफिक कंट्रोल से संपर्क टूट जाएगा और दुर्घटनाएं होने लगेंगी। मिसाइलें अपने आप चलने लगेंगी। अमरीका ने तो अपने नागरिकों के लिए ट्रैवल एडवाइज़री तक जारी कर दी।

भारत के हिन्दी चैनलों में भी एक अफवाह उड़ी थी कि दुनिया 2012 में ख़त्म हो जाएगी। लोगों में उत्तेजना और चिन्ता पैदा कर चैनलों ने टी आर पी बटोरी और खूब पैसे कमाए। इसकी कीमत पत्रकारिता ने चुकाई और वहां से हिन्दी टीवी पत्रकारिता तेज़ी से दरकने लगी। मंकी मैन का संकट टीवी चैनलों ने गढ़ा। कैराना के कश्मीर बन जाने का झूठ भी चैनलों ने ही गढ़ा था।

कई सरकारों ने Y2K संकट से लड़ने के लिए टास्क फोर्स का गठन किया। भारत भी उनमें से एक था। आउटलुक पत्रिका में छपा कि भारत ने 1800 करोड़ खर्च किए। Y2K को लेकर कई किताबें आईं और बेस्ट सेलर हुईं। इस संकट से लड़ने के लिए बड़ी बड़ी कंपनियों ने फर्जी कंपनियां बनाईं और सॉफ्टवेयर किट बेचकर पैसे कमाए। बाद में पता चला कि यह संकट तो था ही नहीं, तो फिर समाधान किस चीज़ का हुआ?

भारत की साफ्टवेयर कंपनियों ने इस संकट का समाधान नहीं किया था। बल्कि इस अफवाह से बने बाज़ार में पैसा बनाया था। ये वैसा ही था, जैसे दुनिया की कई कंपनियों ने एक झूठी बीमारी की झूठी दवा बेच कर पैसे कमाए थे। जैसे गंडा, ताबीज़ बेचकर पैसा बना लेते हैं। बेस्ट सेलर किताबें लिखकर लेखकों ने पैसे कमाए थे और एक ख़बर के आस-पास बनी भीड़ की चपेट में मीडिया भी आता गया और वह उस भीड़ को सत्य की खुराक देने की जगह झूठ का चारा देने लगा, ताकि भीड़ उसकी खबरों की चपेट में बनी रहे।

31 दिसंबर 1999 की रात दुनिया सांस रोके कंप्यूटर के नियंत्रण से छुट्टी पाकर बेलगाम होने वाली मशीनों के बहक जाने की ख़बरों का इंतज़ार कर रही थी। 1 जनवरी

2000 की सुबह प्रेसिडेंट क्लिंटन काउंसिल ऑन ईयर 2000 कंवर्जन के चेयरमैन जॉन कोस्किनेन एलान करते हैं कि अभी तक तो ऐसा कुछ नहीं हुआ है। उन तक ऐसी कोई जानकारी नहीं पहुंची है कि Y2K के कारण कहीं सिस्टम ठप्प हुआ हो। Y2K दरअसल कोई कहानी ही नहीं थी। कोई संकट ही नहीं था। 21 वीं सदी का आगमन झूठ के स्वागत के साथ हुआ था। उस दिन सत्य की हार हुई थी।

पत्रकार निक डेविस ने अपनी किताब में लिखा है कि ठीक है कि पत्रकारिता के नाम पर पत्रकारों ने बेशर्मी से इस कहानी को गढ़ा, उसमें कोई ख़ास बात नहीं है। ख़ास बात ये है कि अच्छे पत्रकार भी इसकी चपेट में आए और Y2K को लेकर बने माहौल के आगे सच कहने का साहस नहीं कर सके। निक डेविस ने इस संकट के बहाने मीडिया के भीतर जर्जर हो चुके ढांचे और बदलते मालिकाना स्वरूप की भी बेहतरीन चर्चा की है। कैसे एक जगह छपा हुआ कुछ कई जगहों पर उभरने लगता है, फिर कॉलम लिखने वालों से लेकर पत्रकारों की कलम से धारा प्रवाह बहने लगता है।

Y2K की शुरूआत कनाडा से हुई थी। 1993 के मई महीने में टोरंटो शहर के फाइनेंशियल पोस्ट नाम के अखबार के भीतर एक खबर छपी। सिंगल कॉलम की ख़बर थी। बहुत छोटी सी। खबर यह थी कि 21वीं सदी की शुरूआत की आधी रात कई कंप्यूटर सिस्टम बैठ जाएंगे। 1995 तक आते आते यह छोटी सी ख़बर कई रूपों में उत्तरी अमरीका, यूरोप और जापान तक फैल गई। 1997-1998 तक आते आते यह दुनिया की सबसे बड़ी खबर का रूप ले चुकी थी। बड़े-बड़े एक्सपर्ट इसे लेकर चेतावनी देने लगे और एक ग्लोबल संकट की हवा तैयार हो गई।

Y2K ने मीडिया को हमेशा के लिए बदल दिया। फेक न्यूज़ अपने आज के स्वरूप में आने से पहले कई रूपों में आने लगा। मीडिया के जरिये जनमत बनाकर कोरपोरेट अपना खेल खेलने लगा। फेक न्यूज़ के तंत्र ने लाखों लोगों की हत्या करवाई। झूठ के आधार पर इराक युद्ध गढ़ा गया, जिसमें 16 लाख लोग मारे गए। तब अधिकांश मीडिया ने इराक से संबंधित प्रोपेगैंडा को पैंटागन और सेना के नाम पर हवा दी थी। मीडिया हत्या के ग्लोबल खेल में शामिल हुआ। लोक और लोकतंत्र का साथी नहीं है। आपके समझने के लिए एक और उदाहरण देता हूं।

ब्रिटेन की संसद ने एक कमेटी बनाई। सर जॉन चिल्कॉट की अध्यक्षता में। इसका काम था, 2001 से 2008 के बीच ब्रिटेन की सरकार के उन निर्णयों की समीक्षा करना, जिसके आधार पर इराक युद्ध में शामिल होने का फैसला हुआ था। दूसरे विश्व युद्ध के बाद ब्रिटेन पहली बार किसी युद्ध में शामिल हुआ था। इस कमेटी के सामने ब्रिटेन के प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर की पेशी हुई थी। द इराक इनक्वायरी नाम से यह रिपोर्ट 2016 में आ चुकी है। 6000 पन्नों की है।

इस रिपोर्ट में साफ लिखा है कि इराक के पास रासायनिक हथियार होने के कोई सबूत नहीं थे। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर ने संसद और देश से झूठ बोला। उस वक्त ब्रिटेन में दस लाख लोगों का प्रदर्शन हुआ था इस युद्ध के खिलाफ। मगर मीडिया सद्दाम हुसैन के खिलाफ हवा बनाने लगा। टोनी ब्लेयर की छवि ईमानदार हुआ करती थी। उनकी इस छवि के आगे कोई विरोध प्रदर्शन टिक नहीं सका। सभी को लगा कि हमारा युवा प्रधानमंत्री ईमानदार है। वह गलत नहीं करेगा। लेकिन उसने अपनी ईमानदारी को धूल की तरह इस्तेमाल किया और लोगों की आंखों में झोंक दिया। इराक में लाखों लोग मार दिए गए।

सिर्फ एक अखबार था डेली मिरर, जिसने 2003 में टोनी ब्लेयर के ख़ून से सने दोनों हाथों की तस्वीर कवर पर छापी थी। बाकी सारे अखबार गुणगान में लगे थे। जब चिल्काट कमेटी की रिपोर्ट आई तो गुणगान करने वाले अखबारों ने ब्लेयर को हत्यारा लिखा। जिस प्रेस कांफ्रेंस में यह रिपोर्ट जारी हो रही थी, उसमें इराक युद्ध में शहीद हुए सैनिकों के परिवार वाले भी मौजूद थे, जिन्होंने ब्लेयर को हत्यारा कहा। आप पुलवामा के शहीदों के परिवार वालों को भूल गए होंगे। उन्हें किसी सरकारी आयोजन में देखा भी नहीं होगा।

बहरहाल मीडिया का तंत्र अब क़ातिलों के साथ हो गया है। इराक युद्ध के बाद भी लाखों लोगों का अलग अलग तरीके से मारा जाना अब भी जारी है। Y2K का संकट अनजाने में फैल गया। इसने कंप्यूटर सिस्टम को ध्वस्त नहीं किया, बल्कि बता दिया कि इस मीडिया का सिस्टम ध्वस्त हो चुका है। भारत में अब मीडिया के भीतर फेक न्यूज़ और प्रोपेगैंडा ही उसका सिस्टम है। प्रधानमंत्री मोदी से बेहतर इस सिस्टम को कौन समझ सकता है। दुनिया के लिए Y2K संकट की अफवाह 1 जनवरी 2000 को समाप्त हो गई थी, लेकिन मीडिया के लिए खासकर भारतीय मीडिया के लिए Y2K संकट आज भी जारी है, आज भी वह झूठ के जाल में आपको फांसे हुए है। ❑

## दक्षिण कोरिया का चर्चित 3टी मॉडल

**ए**क ओर जहां अमेरिका, चीन, इटली और भारत जैसे देश कोरोना वायरस से जूझते नजर आ रहे हैं. वहीं ताइवान के बाद दक्षिण कोरिया दूसरा ऐसा देश बन गया है, जिसने बिना वैक्सीन, एंटी बॉडी और बड़े पैमाने पर लॉकडाउन किये ही इस बीमारी से उबरने में सफलता पा ली है।

दक्षिण कोरिया में कई तरह की गाइडलाइंस के साथ ही दफ्तर, म्यूजियम खुलने लगे हैं. सड़कों पर वैसी भीड़ तो नजर नहीं आ रही है, लेकिन अब पहले जैसा सन्नाटा भी नहीं दिख रहा है. मई में ही स्कूल भी खोलने की तैयारी चल रही है. दक्षिण कोरिया में कोरोना वायरस के लगभग 10 हजार केस हुए हैं, जिनमें 9 हजार से ज्यादा लोग ठीक हो चुके हैं. मई के शुरुआती दिनों में सिर्फ 30 केस आए हैं. दरअसल कोरोना से लड़ने के लिए दक्षिण कोरिया ने 3 टी मॉडल का इस्तेमाल किया है. इसका मतलब है, ट्रेस, टेस्ट और ट्रीट.

दक्षिण कोरिया की सड़कों पर भी ट्रैफिक सामान्य तो नहीं हो पाया है, लेकिन वहां की स्थिति बता रही है कि दक्षिण कोरिया ने पहले चरण में ठीक ठाक प्रगति की है. 13 मई से हाईस्कूल और 20 मई से किंडरगार्टन स्कूल खुल जाएंगे. 16 मार्च के बाद से दक्षिण कोरिया में एक्टिव केसों की संख्या कम होने लगी थी. अप्रैल में कुछ दिन नए केसों की संख्या दो या तीन ही रही. 7 मई को नए केसों की संख्या सिर्फ सात थी. भारत ने लॉकडाउन किया, और 44 दिन बीत जाने के बाद एक भी दिन ऐसी उपलब्धि हासिल नहीं की है. **–एनडीटीवी**

27 मई : नेहरू पुण्यतिथि

# हर भारतवासी को विश्व नागरिक बनना है

❑ जवाहरलाल नेहरू

भारत एक भौगोलिक और आर्थिक सत्ता है, उसकी विभिन्नता में सांस्कृतिक एकता है। यह विरुद्धों का एक ऐसा पुंज है, जो मजबूत और अदृश्य सूत्रों से बंधा है। बार-बार के आक्रमणों के बावजूद उसकी आत्मा कभी जीती नहीं जा सकी। आज भी वह अदम्य है, अपराजेय है। पुरानी किवदंतियों की तरह उसमें पकड़ में न आने वाली एक विशेषता है। ऐसा लगता है, जैसे उसका मन किसी सम्मोहन से बंधा है। वह एक मिथक है और एक विचार है। एक स्वप्न है और एक कल्पनाचित्र है। फिर भी वह एकदम वास्तविक है, मौजूद है और व्यापक है। कुछ अंधियारे गलियारों की भयावह झलकियां आदिम रातों की ओर वापस लौटाती लगती हैं, परंतु साथ ही उसके भरे पूरे और ऊष्मा भरे दिन भी हैं। कभी-कभी उसे शर्म महसूस होती है या पाश्चात्ताप होता है, कभी वह दुराग्रही और जिद्दी होती है। यहां तक कि उसमें एक उन्माद दिखायी पड़ता है, ऐसा है अतीत इस देश का। लेकिन वह अत्यंत प्रीतिकर है, और उसके बच्चे चाहे वे कहीं भी चले जायें, और चाहे भाग्य उनके साथ जैसा व्यवहार करे, ये उसे कभी नहीं भुला सकते। वह अपनी महानता और असफलता दोनों में उनका एक अंश है, और उसकी गहरी आंखों में उनका दर्पण हैं। वे आंखें जिन्होंने जीवन के आवेग, उल्लास और भूलों को देखा है और ज्ञान-कूप की गहराई में झांका है। उनमें से हर एक उसकी ओर आकर्षित होता है, लेकिन शायद हर एक के इस आकर्षण का कारण अलग-अलग है, या इस आकर्षण का कोई विशेष कारण ही नहीं है, हर एक को उसके बहुपक्षीय व्यक्तित्व का एक अलग पहलू दिखायी पड़ता है। एक युग के बाद दूसरे युग में उसने महान स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है, जो पुरानी परम्परा को लेकर चले हैं और उसे बदलते हुए समय के अनुरूप ढालते भी रहे हैं। उस महान परम्परा में रवीन्द्रनाथ टैगोर हुए, जो आधुनिक युग की प्रकृति और प्रवृत्तियों से सराबोर थे, लेकिन उनकी नींव भारत के अतीत में थी। उन्होंने अपने व्यक्तित्व में प्राचीन और नवीन का समन्वय किया था। उन्होंने कहा था, *''मैं भारत से प्रेम करता हूं। इसलिए नहीं कि मैं उसके भौगोलिक आकार की उपासना करता हूं, न इसलिए कि संयोग से मेरा जन्म उसकी मिट्टी पर हुआ है, बल्कि इसलिए कि उसने अपनी महान संतानों की आलोकमयी चेतना से निकले हुए सजीव शब्दों को समय की उथल-पुथल के बीच भी सुरक्षित रखा है।''* बहुत से लोग यही बात कहेंगे, जबकि कुछ ओर लोग उसके प्रति अपने प्रेम की व्याख्या दूसरे ढंग से करेंगे।

ऐसा लगता है, जैसे पुराना जादू अब टूट रहा है और भारत माता चारों ओर देखती हुई वर्तमान के प्रति जागरूक हो रही है। उसमें परिवर्तन होगा, और यह परिवर्तन जरूरी है, फिर भी वह पुराना सम्मोहन बना रहेगा और उसकी जनता के हृदयों को बांधे रखेगा। चाहे उसकी वेषभूषा बदल जाये, लेकिन वह ज्यों-की-त्यों रहेगी, और उसका ज्ञान-भंडार, इस कठोर, प्रतिशोधी और लोभी दुनिया में जो कुछ सत्य और सुंदर है, उसे अपनाये रखने में उसकी सहायता करेगा।

100 वर्ष पहले, इमर्सन ने अमरीका में अपने देशवासियों को चेतावनी दी थी कि सांस्कृतिक दृष्टि से न यूरोप का अनुकरण करें न उस पर बहुत अधिक निर्भर रहें। एक नई कौम होने के नाते वह चाहता था कि वे लोग अपने यूरोपीय अतीत की ओर देखने के बजाय अपने नये देश के समृद्ध जीवन से प्रेरणा लें।

हमें भारत में अतीत और सुदूर की खोज में देश के बाहर नहीं जाना है। हमारे अपने पास उसकी बहुतायत है। अगर हम विदेशों में जाते हैं, तो केवल वर्तमान की तलाश में। यह तलाश जरूरी है, क्योंकि उससे अलग रहने का अर्थ है, पिछड़ापन और क्षय। इमर्सन के समय का संसार बदल गया है और पुरानी दीवारें टूट रही हैं, जीवन अधिक अंतर्राष्ट्रीय होता जा रहा है। इस आने वाले अंतर्राष्ट्रीयतावाद में हमें अपनी भूमिका निभानी है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें यात्राएं करनी हैं, औरों से मिलना है, उनसे सीखना है और उन्हें समझना है, लेकिन *सच्ची अंतर्राष्ट्रीयता कोई ऐसी हवाई चीज नहीं है, जिसकी न कोई बुनियाद हो और न कोई लंगरगाह। उसे राष्ट्रीय संस्कृतियों से बाहर निकलना है और आज वह स्वतंत्रता, समानता और सच्ची अंतर्राष्ट्रीयता के आधार पर ही उन्नति कर सकती है।*

हम किसी मामूली देश के नागरिक नहीं हैं, और हमें जन्मभूमि पर, अपने देशवासियों पर, अपनी संस्कृति और परंपराओं पर गर्व है। यह गर्व किसी ऐसे रोमांचक अतीत के लिए नहीं होना चाहिए, जिससे हम चिपटे रहना चाहते हैं, न ही इससे अनन्यता को बढ़ावा मिलना चाहिए और न ही हमारे ढंग से भिन्न औरों के ढंग को समझने में इससे कोई कठिनाई होनी चाहिए। इसके कारण हमें अपनी कमजोरियों और असफलताओं को भी कभी नहीं भूलना चाहिए और न ही उनसे छुटकारा पाने की हमारी इच्छा कुंठित होनी चाहिए। इससे पहले कि हम मानवीय सभ्यता और प्रगति की गाड़ी में औरों के साथ अपनी सही जगह ले सकें, हमें अभी बहुत लंबा सफर तय करना है और बहुत-सी कमी को पूरा करना है। और हमें जल्दी करनी है, क्योंकि हमारे पास समय सीमित है और दुनिया की रफ्तार लगातार तेजी से बढ़ती जा रही है। अतीत में भारत दूसरी संस्कृतियों का स्वागत करके उन्हें आत्मसात कर लेता था। आज इस बात की कहीं अधिक आवश्यकता है, क्योंकि हम भविष्य की उस ''एक दुनिया'' की तरफ बढ़ रहे हैं, जहां राष्ट्रीय संस्कृतियां मानव जाति की अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति में घुलमिल जायेंगी। इसलिए हमें जहां भी समझदारी, ज्ञान, मित्रता और सहयोग मिलेगा, हम वहीं उसकी तलाश करेंगे और हम सामूहिक कामों में सबके साथ सहयोग करेंगे, लेकिन हम दूसरों की कृपा और सहारे के प्रार्थी नहीं हैं। इस तरह हम सच्चे भारतीय और एशियाई होंगे और साथ ही अच्छे अंतर्राष्ट्रीयतावादी और विश्व नागरिक होंगे।

*—उपसंहार : भारत की खोज*

# यह एक शांतियोद्धा का प्रस्थान है

## नेहरू जी के निधन पर विश्व नेताओं की श्रद्धांजलि

**अमरीकी राष्ट्रपति जानसन-** आज हम सभी भारत के महान नेता और हम सबके प्रिय मित्र प्राइममिनिस्टर नेहरू के निधन पर अपना दुख प्रकट करने के लिए एकत्र हुए हैं। उनकी स्पिरिट अभी जिन्दा है। अपनी जनता में विश्वास और मानवता के प्रति अपने प्रेम की जो समृद्ध विरासत वे छोड़ गये हैं, उनके उन आदर्शों को वास्तविकता में बदलने की जिम्मेदारी हम सबके कंधों पर है। मानवता की सेवा के लिए उनका स्मरणीय योगदान इतिहास में दर्ज होगा। अपने देश की मजबूती और आत्मनिर्भरता के लिए उनके समर्पण को याद रखा जायेगा। वे न केवल भारत के, वरन विश्व के नेता थे। विश्व शांति के लिए उनका योगदान दुनिया के किसी भी दूसरे नेता से अधिक है।

**सोवियत संघ के सर्वोच्च नेता ख्रुश्चेव-** हमने उनमें एक अद्वितीय स्टेट्समैन की छवि देखी। बड़े दिल वाला विलक्षण मेधा से सम्पन्न एक ऐसा महान नेता, जो अपने जीवन की अंतिम सांस तक लोक कल्याण के लिए जीता रहा। उन्होंने आजीवन अपनी पूरी ऊर्जा और शक्ति दुनिया के लोगों के बीच शांति, मैत्री और विकास के लिए लगायी।

**संयुक्त राष्ट्र महासचिव यू थांट -** आज सुबह-सुबह प्राइममिनिस्टर नेहरू के निधन की खबर सुनकर मुझे गहरा धक्का लगा। वर्तमान दुनिया में कम ही नेता ऐसे होंगे, जिन्होंने अपने देश के इतिहास को उनकी तरह बदलने का काम किया हो। दुनिया की सबसे बड़ी लोकतांत्रिक व्यवस्था में अपनी लोकपक्षीय नीतियों और अपनी जिम्मेदारियों के गरिमापूर्ण निर्वहन से उन्होंने दुनिया में विमर्श की दिशा बदल दी। भारत के इस दुख में हम यह कहते हुए शामिल हो रहे हैं कि इस दुख को सारी दुनिया में महसूस किया जा रहा है।

**अमरीकी राष्ट्रपति आइजनहावर-** दुनिया के अनेक नेताओं और सरकारों से उनके मतभेद रहे, बहुत बार हमारी भी उनसे असहमति रही, लेकिन विश्वशांति के लिए प्राइममिनिस्टर नेहरू की गहरी निष्ठा और भारत की विशाल जनसंख्या के कल्याण के लिए उनका समर्पण असंदिग्ध था। अपनी बात कहूं तो दुनिया के तमाम मसलों पर चर्चा के लिए जब भी उनसे मिलने का मौका मिला, मेरे लिए वह बेहतरीन अवसर की तरह था। उनका मित्र होने पर मुझे गर्व की अनुभूति होती है। आज उनके निधन पर उनके और उनके लोगों के सम्मान में मैं और मेरी धर्मपत्नी अपना गहरा क्षोभ और दुख प्रकट करते हैं।

**अमरीकी राष्ट्रपति हरबर्ट हूवर-** प्राइममिनिस्टर जवाहरलाल नेहरू अपने देश और देशवासियों के लिए ही जिये और उन्हीं के लिए मरे। हमारे मन में उनके लिए गहरा सम्मान है।

**अमरीकी राष्ट्रपति हैरी ट्रूमैन-** प्राइममिनिस्टर जवाहरलाल नेहरू हमारे समय के सर्वाधिक महान व्यक्तियों में एक थे। वे अद्‌भुत थे।

**अमरीकी राज्य सचिव डीन रस्क-** वह प्राइममिनिस्टर जवाहरलाल नेहरू ही थे, जिनके होते हुए हर भारतवासी यह कह सकता था कि भारत सारी दुनिया के लिए जीता है और अपने सभी राष्ट्रीय दायित्वों के साथ विश्व बिरादरी के प्रति अपने दायित्वबोध को भी समझता है।

**6ठवें ईसाई धर्मगुरु पोप जॉन पॉल-** ऐसा लगता है, जैसे भारत ने अपना पिता खो दिया है और सारी दुनिया भारत के इस दुख में डूब गयी है। प्राइम मिनिस्टर नेहरू के दुबले पतले शरीर में न्याय, उम्मीद और आजादी की आग धधकती थी। उनके देश और दुनिया ने बड़े कठिन वक्त में एक ऊंचे कद का विश्व नेता खो दिया है, जिसकी मेधा की दुनिया को बहुत जरूरत थी। बेहद पीड़ाजनक यह खबर सुनने के बाद एक सन्नाटा-सा बन गया है। उनकी बेटी, उनके परिवार और उनके देश के इस दुख में मैं पूरी तरह शामिल हूं।

**फ्रांसीसी राष्ट्रपति डी गॉल-** उनके व्यक्तित्व की खुशबू सारी दुनिया में व्याप्त थी। भारत का सौभाग्य था कि तमाम सद्‌गुणों से विभूषित एक व्यक्ति उनके लोकतंत्र, उनकी सामाजिक उन्नति और उनकी शांति के लिए समर्पित रहा। उनके गहन समर्पण ने भारत और शेष विश्व का भाग्य तय किया।

**ब्रिटिश महारानी क्वीन एलिजाबेथ द्वितीय-** मैं मिस्टर नेहरू के निधन की खबर सुनकर अत्यन्त मर्माहत महसूस कर रही हूं। कॉमनवेल्थ देशों सहित सारी दुनिया के शांति प्रिय लोग उनके जाने से शोकाकुल हैं। मैं, मेरे पति और मेरा पूरा परिवार इस अपूरणीय क्षति की बेला में भारत की जनता के साथ है।

**ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली-** मिस्टर नेहरू इस विश्व के महानतम नेताओं में से एक थे। एक महान राजपुरुष के रूप में उनकी प्रतिष्ठा पर कभी कोई दाग नहीं लगा। हम उनके अवसान की खबर से सन्न रह गये हैं।

**मिश्र के राष्ट्रपति नासिर-** भारत के प्रधानमंत्री पं. नेहरू के जाने की खबर ने मुझे गहरे दुख से भर दिया है। उनकी मित्रता मेरे लिए अनमोल धरोहर की तरह है। उनकी अधिकतम यादों को मैं थाती की तरह संजोना चाहूंगा। वे पिछले कई वर्षों से मेरे गहरे और निकटतम मित्र थे। मैंने उन्हें एक नेता, एक चिन्तक, एक स्टेट्समैन और एक मनुष्य के रूप में बहुत विशिष्ट पाया। वे भारत सहित एशिया और शेष विश्व के लिए प्रकाश स्तम्भ की तरह थे। उनके जीवन के साथ ही उनकी जिम्मेदारियां खत्म हो गयी हैं। लेकिन वह जीवन ज्योति तो हमेशा प्रकाशमान रहेगी।

**वायसरॉय लॉर्ड माउन्टबेटन-** मिस्टर नेहरू विश्व इतिहास के महान व्यक्तित्व थे। उनके जाने से दुनिया निर्धन हो गयी है। वे न केवल महान, बल्कि बेहद उदार भी थे। हमने उन्हें सालों तक जेल में रखा, पर उन्होंने अपनी व्यक्तिगत सुविधा के लिए कभी हमसे थोड़ी सी भी नाराजगी व्यक्त नहीं की।

**बर्नार्ड बारुक-** प्राइम मिनिस्टर नेहरू

हमारे समाज के सबसे ऊंचे व्यक्तित्व वाले नेता थे।

**भारतीय रक्षा मंत्री बी चह्वाण-** पंडित जी का निधन केवल भारत की क्षति नहीं है। उनका जाना दुनिया से लोकतंत्र के एक योद्धा का जाना है।

**श्रीलंका की प्रधानमंत्री सिरीमाओ भंडारनायके-** एक महान जीवन ज्योति तिरोहित हो गयी है, जिसकी रोशनी से यह पूरा कालखंड रोशन था।

**अमरीकी उपराष्ट्रपति नेल्सन रॉकफेलर-** प्राइम मिनिस्टर नेहरू बीसवीं शताब्दी के महानतम स्टेट्समैन थे। अपने देश और देशवासियों की आजादी के लिए उनके संघर्ष को भुलाया नहीं जा सकेगा।

**एशियन सोसाइटी के अध्यक्ष जॉन डी रॉकफेलर-** जवाहरलाल नेहरू का निधन केवल भारत की ही नहीं, सारी दुनिया की क्षति है। वे हमारे समय के कमाल के आदमी थे। उनके सद्‌गुण अविश्वसनीयता की हद तक उनमें समाहित थे।

**यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति टीटो-** भारतवासियों का यह नुकसान बहुत बड़ा है। आज जबकि उनके देश और बाकी दुनिया में शांति को बड़ा खतरा है, ऐसे में उनका जाना निराश करता है। उनकी बहुत बड़ी भूमिका थी। गुटनिरपेक्ष देशों, विकासशील देशों और बड़े अर्थों में पूरी दुनिया के लिए ही पंडित नेहरू का यूं विदा लेना, एक शांति योद्धा का प्रस्थान है। उनके सम्मान में हमारी विनम्र श्रद्धांजलि।

इनके अतिरिक्त जिन दूसरे विश्व नेताओं की श्रद्धांजलि प्राप्त हुईं, उनके नाम हैं—नेपाल के शाह महेन्द्र, जॉन केनेथ गालबेथे, मेयर वागनेर, हबीबुर्रहमान, फिलीपीन्स के राष्ट्रपति डियोसडाडो मेकापैगल, इटली के प्रधानमंत्री एल्डोमोर, जापान के प्रधानमंत्री हयातो इकेडा, कनाडा के प्रधानमंत्री लीस्टर बी परसन, मोन्टाना के सीनेटर माइक मैन्स, मिक डिर्कसन, मैसाचुसेटस के जॉन डब्ल्यू मैककोर्मैक और सीनेटर हबर्ट हम्फ्री।

—(न्यूयार्क टाइम्स)

अनुवाद-प्रेमप्रकाश

# मेरे मन में उनकी प्रतिष्ठा के लिए अपार प्रेम है

**❑ अटल बिहारी वाजपेयी**

*पंडित जवाहर लाल नेहरू के निधन पर अटल बिहारी वाजपेयी ने अलग ही अंदाज में उन्हें श्रद्धांजलि दी थी। नेहरू जी की संसद में दी गयी अटल जी की श्रद्धांजलि का यह अविकल पाठ है।* **–सं.**

**चिराग बुझ गया**

आज एक सपना खत्म हो गया है, एक गीत खामोश हो गया है, एक लौ हमेशा के लिए बुझ गई है। यह एक ऐसा सपना था, जिसमें भुखमरी, भय या डर नहीं था, यह ऐसा गीत था, जिसमें गीता की गूंज थी तो गुलाब की महक भी थी। यह चिराग की ऐसी लौ थी, जो पूरी रात जलती थी, हर अंधेरे का इसने सामना किया, इसने हमें रास्ता दिखाया और एक सुबह निर्वाण की प्राप्ति कर ली।

**मृत्यु निश्चित है**

मृत्यु निश्चित है, शरीर नश्वर है। वह सुनहरा शरीर जिसे कल हमने चिता के हवाले किया, उसे तो खत्म होना ही था, लेकिन क्या मौत को भी इतना धीरे से आना था, जब दोस्त सो रहे थे, गार्ड भी झपकी ले रहे थे, हमसे हमारे जीवन के अमूल्य तोहफे को लूट लिया गया। आज भारत माता दुखी हैं, उन्होंने अपने सबसे कीमती सपूत को खो दिया। मानवता आज दुखी है, उसने अपना सेवक खो दिया। शांति बेचैन है, उसने अपना संरक्षक खो दिया। आम आदमी ने अपनी आंखों की रोशनी खो दी है, पर्दा नीचे गिर गया है। मुख्य किरदार ने दुनिया के रंगमंच से अपनी आखिरी विदाई ले ली है।

**क्रांति के अग्रदूत थे**

रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने भगवान राम के बारे में कहा था कि वह असंभव को साथ लेकर आए थे। पंडित जी के जीवन में हमने उस महान कवि की झलक को देखा है। वह शांति के साधक थे तो साथ ही क्रांति के अग्रदूत भी थे। वह अहिंसा के भी साधक थे, लेकिन हथियारों की वकालत की और देश की आजादी और प्रतिष्ठा की रक्षा की। वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता के समर्थक थे, साथ ही आर्थिक समानता के भी पक्षधर थे। वह किसी से भी समझौता करने से नहीं डरते थे, लेकिन उन्होंने किसी के भय से समझौता नहीं किया। पाकिस्तान और चीन को लेकर उनकी नीति जबरदस्त मिश्रण का उदाहरण थी। यह एक तरफ सहज थी तो दूसरी तरफ दृढ़ भी थी। यह दुर्भाग्य है कि उनकी सहजता को कमजोरी समझा गया, लेकिन कुछ लोगों को पता था कि वह कितने दृढ़ थे।

**कमजोर नहीं थे नेहरू**

मुझे याद है मैंने उन्हें एक दिन काफी नाराज होते हुए देखा था, जबकि उनके दोस्त चीन ने सीमा पर तनाव को बढ़ा दिया था। उस वक्त चीन, भारत पर पाकिस्तान के साथ कश्मीर के मुद्दे पर समझौता करने के लिए मजबूर कर रहा था। लेकिन जब उन्हें बताया गया कि उन्हें दो तरफ से लड़ाई लड़नी पड़ेगी तो वह समझौते के बिल्कुल भी पक्ष में नहीं थे। नेहरू जिस आजादी के समर्थक थे, वह आज खतरे में है। हमें उसे बचाना होगा। जिस राष्ट्रीय एकता और सम्मान के वह पक्षधर थे, वह आज खतरे में है। हमें इसे किसी भी कीमत पर बचाना होगा। जिस भारतीय लोकतंत्र को उन्होंने स्थापित किया, उसका भविष्य खतरे में है। हमें अपनी एकजुटता, अनुशासन, आत्मविश्वास से एक बार फिर से लोकतंत्र को सफल बनाना होगा।

**सूरज ढल चुका है**

नेता चला गया है, लेकिन उसे मानने वाले अभी भी हैं। सूरज ढल चुका है, लेकिन अब हमें सितारों की रौशनी से ही अपना रास्ता तलाशना होगा। यह परीक्षा का समय है, अगर हम सब खुद को उनके विचारों पर आगे लेकर चले तो समृद्ध भारत के सपने सच कर सकते हैं, विश्व में शांति ला सकते हैं, यह सच में पंडित नेहरू को सच्ची श्रद्धांजलि होगी। संसद के लिए यह अपूर्णनीय क्षति है, ऐसा निवासी दोबारा तीन मूर्ति मार्ग पर नहीं आएगा। जबरदस्त व्यक्तित्व, विपक्ष को भी साथ लेकर चलने की क्षमता, उनके व्यक्तित्व को फिर से परिभाषित करता है, ऐसी महानता शायद हम भविष्य में कभी नहीं देख पाएं। विचारों के मतभेद के बाद भी उनके विचारों के लिए मेरे अंदर सम्मान है, उनकी प्रतिष्ठा के लिए प्रेम है, देश के प्रति उनके प्रेम और अदम्य साहस का मैं सम्मान करता हूं। इन्ही शब्दों के साथ मैं उस महान आत्मा को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं। ❑

# गांधी ने आखिर नेहरू को ही अपना राजनीतिक वारिस क्यों चुना!

❑ अव्यक्त

**पं**डित नेहरू और महात्मा गांधी की पहली मुलाक़ात 1916 में क्रिसमस के दिन हुई थी. उस दिन लखनऊ में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन चल रहा था. तबसे चार साल पहले ही नेहरू इंग्लैंड में स्कूल और कॉलेज की पढ़ाई कर भारत वापस लौटे थे. उस समय नेहरू 27 साल के थे और गांधी उनसे 20 साल बड़े यानी 47 के थे. दोनों ने एक-दूसरे को कौतूहल से देखा जरूर, लेकिन एक-दूसरे से कोई खास प्रभावित न हुए. क्योंकि तबसे करीब छह-सात वर्ष बाद 1922 से 1924 के बीच जब गांधी ने अपनी आत्मकथा यानी 'सत्य के प्रयोग' बोल-बोल कर लिखाई थी, तो उसमें कहीं भी जवाहरलाल नेहरू का जिक्र नहीं किया. हां, उनके पिता मोतीलाल नेहरू की चर्चा उसमें अवश्य हुई है.

शुरुआत में नेहरू जी गांधीजी से थोड़े खिंचे-खिंचे ही रहते थे. वे गांधी को पहले ठीक से समझ लेना चाहते थे, क्योंकि आधुनिकतावादी युवा नेहरू को महात्मा गांधी की आध्यात्मिक भाषा कई बार 'मध्ययुगीन' और 'पुनरुत्थानवादी' प्रतीत होती थी. लेकिन गांधी जिनसे भी जुड़ते थे, एकदम व्यक्तिगत और आत्मीय रूप से जुड़ते थे. नेहरू को उन्होंने शुरू-शुरू में खूब काम में लगाया. तरह-तरह के तथ्यान्वेषण दल या फैक्ट फाइंडिंग टीम का सदस्य बनाकर उनसे कई यात्राएं कराईं. उनसे तरह-तरह के प्रस्ताव ड्राफ्ट कराए. कई प्रकार के विवादों में भी नेहरू से हस्तक्षेप कराया. अभी तक पिता के घर में सभी तरह के ऐशो-आराम में रहते आए नेहरू को इस तरह धीरे-धीरे अपना निजी अस्तित्व भी समझ में आने लगा. वे मन ही मन इसके लिए गांधी के ऋणी हो गए थे. नेहरू को पता भी नहीं चला कि उन्होंने कब अपने जीवन की कुंजी इस अजीबोगरीब से लगने वाले शख्स गांधी को सौंप दी थी. वे गांधी के होकर रह गए थे. गांधी का स्वावलंबन, त्याग और उनकी निर्भयता ही जवाहर को सबसे अधिक आकर्षित करती थी.

नेहरू के जीवन का ऐसा कोई व्यक्तिगत पहलू नहीं रह गया था जो गांधीजी से छिपा हो. नेहरू के प्रति गांधीजी का पुत्रवत स्नेह अपने पुत्रों से भी अधिक हो चला था.

नेहरू जीवनपर्यंत अपने नेता महात्मा गांधी के असर में रहे. गांधी का जादू उन पर ताजिंदगी कायम रहा. लेकिन 1926-27 के दौरान जहां गांधी भारत, बर्मा और श्रीलंका के अपने भ्रमण में व्यस्त थे, वहीं नेहरू को कमला के स्वास्थ्य के सिलसिले में करीब 21 महीने तक यूरोप में रहना पड़ा. इस दौरान वे कम्युनिस्ट शासन वाले सोवियत रूस के दौरे पर भी गए. माना जाता है कि यूरोप के इस दौरे ने नेहरू के विचारों पर बहुत असर डाला. संभवतः इसीलिए बाद के वर्षों में गांधीजी की हर बात को उन्होंने आंख मूंदकर नहीं माना. 1942 से 1945 के दौरान जेल में ही लिखी गई अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' में भी उन्होंने इस बात को स्वीकारते हुए लिखा है- '...गांधीजी की ज्यादातर बातों को हमने आंशिक रूप में माना और कभी-कभी तो बिल्कुल ही नहीं माना. लेकिन यह सब एक गौण बात थी. उनकी सीख का सार था निर्भयता और सत्य; और इन दोनों के साथ सक्रियता मिली हुई थी और उसमें हमेशा आम लोगों की बेहतरी का ख़याल था.'

हालांकि गांधी के लिए नेहरू में आया यह बदलाव थोड़ा बेचैन करने वाला रहा. प्रौढ़ नेहरू का बापू रूपी गांधी के प्रति व्यवहार कुछ-कुछ वैसा ही रहा, जैसा युवा नेहरू का पिता रूपी मोतीलाल के प्रति रहा था. भारत छोड़ो आंदोलन के बाद के दौर में दोनों के बीच भावी भारत के स्वरूप को लेकर मतभेद एकदम स्पष्ट होते गए. लेकिन भावनात्मक जुड़ाव ऐसा था कि दोनों साधिकार अपने-अपने विचारों पर अड़ते और लड़ते भी रहे, लेकिन आपसी जुड़ाव और स्नेह में कभी भी कमी नहीं आई.

अपनी पुस्तक 'हिंद-स्वराज' में गांधी ने भारतीय सभ्यता की जिन विशिष्टताओं को भावी भारत का आधार बनाने का सपना देखा था, उसका मूल स्वर नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक ही था. नेहरू ने इसमें आधुनिक वैज्ञानिक और राजनीतिक विशेषताओं का भी समावेश करने का प्रयास किया. गांधी को इससे परहेज नहीं था, लेकिन उन्हें इसमें पश्चिम के अंधानुकरण का खतरा दिखता था. अपने अंतिम दिनों में गांधी मानने लगे थे कि अंग्रेजी शिक्षा और चिंतन ने नेहरू को पूरी तरह से यूरोपीय जीवन-प्रणाली की ओर अग्रसर कर दिया है. एक ऐसी जीवन-प्रणाली, जिसमें भारत के गांवों, उसकी ग्रामीण सभ्यता और प्रकृति के अनुकूल एक टिकाऊ विकास की संभावना वाली संतोषी और मितव्ययी जीवनशैली के साथ छलावा हो सकता था. एक दिखावाबाज और अंध-उपभोग की भावना से ग्रसित जीवनशैली समाज को हिंसा और असत्य की ओर धकेल सकती थी.

15 जनवरी, 1942 को वर्धा में हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक में गांधी ने नेहरू को अपना वारिस घोषित करते हुए कहा था- 'मुझसे किसी ने कहा कि जवाहरलाल और मेरे बीच अनबन हो गई है. यह बिल्कुल गलत है. जब से जवाहरलाल मेरे पंजे में आकर फंसा है, तब से वह मुझसे झगड़ता ही रहा है. परंतु जैसे पानी में चाहे कोई कितनी ही लकड़ी क्यों न पीटे, वह पानी को अलग-अलग नहीं कर सकता, वैसे ही हमें भी कोई अलग नहीं कर सकता. मैं हमेशा से कहता आया हूं कि अगर मेरा वारिस कोई है, तो वह राजाजी नहीं, सरदार वल्लभाई नहीं, जवाहरलाल है. वह जो जी में आता है, बोल देता है, मगर काम मेरा ही करता है. मेरे मरने के बाद वह मेरा सब काम करेगा. तब मेरी भाषा भी वह बोलेगा. आखिर हिन्दुस्तान में ही पैदा हुआ है न. हर रोज वह कुछ सीखता है. मैं हूं तो मुझसे लड़ लेता है. परंतु मैं चला जाऊंगा तो लड़ेगा किससे? और लड़ेगा तो उसे बर्दाश्त कौन करेगा? आखिर मेरी भाषा भी उससे ही इस्तेमाल करते बनेगी. ऐसा न भी हो तो भी कम से कम मैं तो यही श्रद्धा लेकर मरूंगा.'

गांधी सचमुच इसी श्रद्धा के साथ मरे. नेहरू के बारे में उनका आकलन बहुत कुछ ठीक भी साबित हुआ. सुस्पष्ट दृष्टि और दिशा के बावजूद नेहरू ने कई मामलों में मध्यमार्ग का रास्ता अपनाया.

**–सत्याग्रह डॉट काम**

विनम्र श्रद्धांजलि

## नहीं रहे कनुभाई मशरूवाला

वरिष्ठ सर्वोदय कार्यकर्ता कनुभाई मशरूवाला का 2 मई 2020 को अकोला (महाराष्ट्र) में निधन हो गया। वे 90 वर्ष के थे। वे स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जेल में रहे, तिलक राष्ट्रीय शाला की स्थापना में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। वे भूदान तथा सर्वोदय आंदोलन में सक्रिय रहे। उनकी बहन का विवाह महात्मा गांधी के पुत्र मणिलाल गांधी के साथ हुआ। दूसरी बहन तारा मशरूवाला सर्वोदय आंदोलन में थीं और उन्होंने अमरावती जिले के माधान गांव में महिलाओं के लिए कस्तूरबा सर्वोदय आश्रम की स्थापना की थी। उन्हें 1982 में जमनालाल बजाज पुरस्कार से भी नवाजा गया।

कनुभाई का कपास का व्यपार था। सन 1988 में वे सूरत से अकोला आये और यहीं बस गये। कनुभाई के निधन से सर्वोदय आंदोलन की भारी क्षति हुई है।

## वयोवृद्ध सर्वोदयी सत्यदेव जी नहीं रहे!

राजस्थान के वरिष्ठ लोकसेवक, प्रदेश सर्वोदय मंडल के सदस्य और स्वतंत्रता सेनानी सत्यदेव जी का झुंझुनूं स्थित उनके गांव देवरोड़ में अपने निवास पर निधन हो गया। 94 वर्षीय सत्यदेव जी नियमित रूप से प्रतिदिन चरखा चलाते थे. सर्व सेवा संघ ने चम्पारण सम्मेलन में उन्हें सम्मानित किया था।

1942 में गांधीजी के भारत छोड़ो आन्दोलन की पुकार ने उनके तरुण मन को झकझोर दिया। उस समय जयपुर में आज़ाद मोर्चा द्वारा संचालित आन्दोलन में उन्होंने सक्रियता से भाग लिया। 1946 में शेखावती में जब प्रजामंडल ने लगान बंदी आन्दोलन शुरू किया तब प्रजामंडल सचिव के रूप में उन्होंने सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया। 1957 में राजस्थान के शीर्ष सर्वोदय नेता गोकुलभाई भट्ट तथा सिद्धराज ढड्ढा के सान्निध्य में प्रारंभ हुई गांधी मार्ग की उनकी यात्रा के दौरान राजस्थान में पूर्ण शराबबंदी तथा भूदान-ग्रामदान के लिये विनोबा जी के नेतृत्व में पदयात्रा उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएं है।

आचार्य विनोबा भावे के नेतृत्व में चंबल घाटी की दस्यु समस्या के समाधान के लिए हुई पदयात्रा उनके जीवन की रोमांचकारी घटना थी।

मई 1999 मे वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गनाइजेशन (डब्ल्यू.टी.ओ.) के नवीनीकरण का विश्व स्तर पर विरोध हो रहा था। ऐसे समय में पीपल्स ग्लोबल एक्शन नामक आंतरराष्ट्रीय किसान संगठन के निमंत्रण पर ठाकुरदास बंग तथा सिद्धराज ढड्ढा के आग्रह पर राजस्थान के 12 सर्वोदय सेवकों को लेकर वे यूरोप पहुंचे और जिनेवा स्थित विश्व व्यापार संगठन के मुख्यालय पर प्रदर्शन किया तथा फ्रांस, इटली, जर्मनी, रूस आदि अन्य देशों में हुए प्रदर्शनों में भाग लिया।

**–भवानी शंकर कुसुम**

## डॉक्टर शिवा लक्ष्मी गांधी का सूरत में निधन

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की पौत्रवधू डॉ. शिवा लक्ष्मी गांधी का विगत 7 मई 2020 को गुजरात के सूरत में निधन हो गया। डॉक्टर शिवा लक्ष्मी गांधी सूरत में एकाकी जिंदगी जी रही थीं और एक पटेल परिवार उनका भरण पोषण कर रहा था.

शिवा लक्ष्मी गांधी अपने पति कनुभाई गांधी के गुजर जाने के बाद अब अकेले ही रहने को मजबूर थीं. शिवा लक्ष्मी की कोई संतान नहीं है. कुछ साल पहले तक वह दिल्ली में रहती थीं, लेकिन कुछ साल से वे सूरत के भीमराड गांव में रह रही थीं और एक पटेल परिवार पर आश्रित थीं.

ये वही भीमराड गांव है, जहां दांडी यात्रा के दौरान महात्मा गांधी ने 1930 में एक मुट्ठी नमक उठाकर अंग्रेजों के नमक कानून को तोड़ा था, उसी गांव के लोग आज उनकी पौत्रवधू डॉक्टर शिवा लक्ष्मी की सेवा कर रहे थे।

## डॉ. स्वाति के निधन से एक शून्य बन गया है

समाजवादी जन परिषद की उपाध्यक्ष और अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच के सचिव-मंडल की सदस्य डॉ. स्वाति का 2 मई 2020 को निधन हो गया। गुर्दों को बुरी तरह नाकाम करने वाली बहुत ही कम होने वाली मल्टिपल माईलोमा नामक प्लाज्मा कोशिकाओं के कैंसर की बीमारी से बहादुरी से जूझते हुए उनकी साँस छूटी। वे नारायण भाई देसाई की पुत्रवधू थीं, उनका विवाह नारायण भाई के छोटे बेटे अफलातून देसाई से हुआ था।

डॉ. स्वाति के निधन से दोनों संगठनों में एक बड़ा शून्य बन गया है, जिसे भर पाना मुश्किल होगा। बदकिस्मती से यह ऐसे वक्त हुआ है जब मुल्क आज़ादी के बाद के सबसे कठिन सियासी दौर से गुज़र रहा है। ऐसे वक्त डॉ. स्वाति जैसी शख्सियत का होना देश के लिए निहायत ज़रूरी था।

हमें इस अनोखी बात पर गौर करना चाहिए कि एक शख्सियत ने विज्ञान और वैज्ञानिक सोच की राह पर चलते हुए सक्रिय राजनीति और समाज में बराबरी और इंसाफ के लिए ज़मीनी जद्दोजहद में भी हिस्सा लिया। जब इतिहास में ऐसी मिसालें ढूँढी जाएँगी, तो इस अनोखे किरदार के एक उम्दा प्रतिनिधि के बतौर डॉ. स्वाति को उनकी यह ऐतिहासिक जगह देने से कोई इंकार नहीं कर पाएगा! ❑

**सर्व सेवा संघ कनु भाई, सत्यदेव जी, डॉ. शिवा लक्ष्मी और डॉ. स्वाति के प्रति अपनी भावभीनी श्रद्धांजजि अर्पित करता है।**

गतिविधियां एवं समाचार

## कोरोना काल में ग्राविस का सहायता कार्य

**को**रोना जैसी विकट परिस्थिति में ग्राविस की तरफ से जैसलमेर, बाड़मेर और जोधपुर के ग्रामीण क्षेत्रों में राहत सामग्री बंटवायी जा रही है। लगभग 3832 परिवारों को भोजन सामग्री उपलब्ध करायी जा चुकी है, जो जैसलमेर, बाड़मेर और जोधपुर के ग्रामीण क्षेत्रों से आते हैं। यह सारा कार्यक्रम क्षेत्रीय प्रशासन की मदद से किया जा रहा है।

* जैसलमेर और जोधपुर के 10 गांवों में 1000 परिवारों को पानी के टैंकर भेजे जा रहे हैं। * ग्राविस ने उत्तराखंड में 6200 व्यक्तियों को भोजन करवाया और 200 परिवारों के बीच राशन वितरण किया। * बुंदेलखंड में 100 परिवारों के बीच राशन वितरण किया। * जोधपुर जिले में ग्राविस अस्पताल द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में रात-दिन मेडिकल सुविधाएं दी जा रही हैं। इसके लिए स्वयंसेवी संस्थाओं व क्षेत्रीय समाज का पैसे व खाद्य सामग्री प्रदान करने में विशेष योगदान रहा है। **–शशि त्यागी**

## 70वां भूदान दिवस मनाया गया

**70वां** भूदान दिवस जोधपुर गांधी स्टडी सर्कल के कार्यकर्ताओं, गांधीजनों व ग्रामीणों ने अपने घरों में मनाया। 18 अप्रैल, 1951 को तेलंगाना के पोचमपल्ली गांव में विनोबा जी को पहला भूदान मिला व इस आंदोलन की शुरुआत हुई तथा कुल 45 लाख एकड़ से अधिक भूमि दान में मिली। विनोबा इस आंदोलन को चैतन्य वृक्ष कहते थे। इसके माध्यम से उन्होंने गरीबी मिटाने, सामाजिक समानता, देश में शांति स्थापना तथा विकेंद्रीकरण जैसे असंख्य बुनियादी काम किये। उन्होंने जय जगत का नारा दिया व विश्व शांति के प्रयास किए। इस अवसर पर कार्यकर्ताओं ने सुबह सर्वधर्म प्रार्थना, ईशावास्य प्रार्थना का पाठ, भूदान गीत 'सत्य अहिंसा शस्त्र न छूटे, सत्याग्रह संग्रामी से' का गायन किया। गीता प्रवचन व भूदान तथा भूदान यात्रा के प्रसंग पढ़े व सुनाए गये। सर्वोदय मित्र राधिका, संतोष कुमार, नारायणी, भंवराराम, सारी, रुद्राक्ष, महेन सहित सभी साथियों ने निष्ठापूर्वक यह आयोजन शहर व ग्रामीण क्षेत्र में किया। कोरोना संकट में घरों में रहने तथा लाकडाउन के नियमों के पालन की शपथ सभी ने ली। **–अशोक चौधरी**

## पोचमपल्ली में राहत कार्य

**1**8 अप्रैल को भूदान दिवस के अवसर पर तालाबंदी के कारण तेलंगाना के पोचमपल्ली गांव में सार्वजनिक रूप से कार्यक्रम करना संभव नहीं था। इसलिए स्थानीय नगरपालिका कर्मचारियों के सहयोग से तेलंगाना सर्वोदय मंडल द्वारा विनोबा और वी. रामचन्द्र रेड्डी की प्रतिमाओं पर पुष्पांजलि अर्पित की गयी। इसके बाद आसपास के जरूरतमंदों और सड़कों से गुजर रहे मजदूरों के बीच चावल आदि खाद्यान्न बांटे गये। अगल-बगल के गांवों में जरूरतमंद परिवारों को दूध आदि का वितरण भी किया गया। वी रामचन्द्र रेड्डी के परिवार और स्थानीय सर्वोदय मंडल से जुड़े कार्यकर्ताओं ने राहत सामग्री के वितरण में अपना सहयोग दिया। खाद्यान्न और दूध के अतिरिक्त दवा तथा जरूरत की अन्य सामग्री भी कई गांवों के जरूरतमंदों के बीच बांटी गयी। **–अरविन्द रेड्डी**

## बिहार में अभावग्रस्त जीवन और अव्यवस्थित क्वारंटाइन सेंटर

**कै**मूर जिला के अंतर्गत विनोबा नगर 83 एकड़ भूदान की जमीन में बसाया गया है। वहां भूदान किसानों के लिए सरकार की तरफ से कोई व्यवस्था नहीं है। बिहार सर्वोदय मंडल की तरफ से अपने स्तर से राहत पहुंचायी जा रही है। यहां के भूदान किसान 5 किमी पहाड़ चढ़कर राशन लेने जाते हैं। सरकार की जन वितरण प्रणाली की व्यवस्था आबादी के नजदीक किये जाने की जरूरत है। चैनपुर प्रखंड में डुगरकोन मसानी गांव के लोगों को आजाद भारत में आज भी संचार क्रांति का इंतजार है। वहां के लोग शेष देश के संपर्क में नहीं रह पाते। वे बीएसएनएल का टॉवर बैठाने की मांग करते हैं। भसानी गांव में पेयजल का संकट है, लोग पहाड़ों की तलहटी से निकला पानी पीते हैं। आदिवासी कल्याण विभाग का स्कूल भवन जर्जर स्थिति में है। आघोरा पहाड़ पर भी पेयजल की व्यवस्था नहीं है।

कोरोना के चलते आने वाले मजदूरों को कोरोन्टाइन नहीं किया जा रहा है। वे सीधे अपने गांवों में पहुंच जाते हैं। उन्हें स्कूलों में रख दिया जाता है। जहां कोई व्यवस्था नहीं है। गांवों में महामारी फैलने की आशंका है। सरकार को अपने स्तर से प्रवासी मजदूरों के लिए काम की व्यवस्था करनी होगी। अगर ऐसा नहीं हुआ तो लोग भुखमरी के शिकार हो सकते हैं। आपराधिक गतिविधियां भी बढ़ सकती है। क्वारंटाइन सेंटर बना दिये जाने के कारण स्कूल भवन फंसे हुए हैं और बच्चों की पढ़ाई का नुकसान हो रहा है। व्यवस्था में अविलंब सुधार लाने की जरूरत है। **–कालिका सिंह**

## लॉकडाउन में गांधी साहित्य का अध्ययन

**लॉ**कडाउन के इन विषम दिनों में एक परिवार ऐसा भी है, जो गांधी साहित्य का अध्ययन करके समय बिता रहा है। भास्कर समूह के एक समाचार के अनुसार भिलाई, मध्य प्रदेश स्थित तमेरपारा धमधा के विष्णु प्रसाद ताम्रकार ने गांधीजी के आदर्शों और उनके जीवन संदेश को ग्रहण करने के लिए गांधीजी के जीवन पर आधारित सैकड़ों पुस्तकों का संग्रह किया है। कोरोना महामारी के वैश्विक प्रकोप के चलते जब पूरा देश घरों में बंद है, ऐसे में ताम्रकार परिवार इन पुस्तकों का अध्ययन कर रहा है। इन पुस्तकों के अलावा उनके संग्रह में चरखा, तकली, मोमेंटो एवं मूर्तियां भी शामिल हैं। इन पुस्तकों के जरिये वे अपने बच्चों को गांधीजी के जीवन और विचार से अवगत करा रहे हैं। उनके बच्चे दिन भर चरखे पर सूत कातते हैं और उनके पिता उन्हें ये पुस्तकें पढ़कर सुनाते हैं तथा गांधीजी के जीवन आदर्शों और आजादी की लड़ाई का इतिहास बताते हैं। **–विश्वनाथ झा**

## प्रवासी मजदूरों में खाद्यान्न वितरण

**त**थाकथित वैश्विक महामारी कोरोना वायरस से लोग उतना प्रभावित नहीं हुए हैं, जितना प्रवासी मजदूरों, उनके परिजनों और किसानों सहित अन्य बीमारियों से ग्रस्त लोगों को मृत्युदण्ड मिल रहा है और उसको आंकड़े भी सामने नहीं आ रहे हैं। ऐसे में सर्वोदय मित्र यथाशक्ति अपने अपने क्षेत्रों में एकल महिलाओं, विकलांगों व पैदल चलकर अपने घर जाने वाले अन्य वंचित परिवारों के बीच आवश्यक सामग्री उपलब्ध करा रहे हैं। बोकारो में सर्वोदय मंडल के जिला अध्यक्ष अदीप कुमार, प्रीतिरंजन दास, महावीर कुमार धनबाद के बाघमारा में उमेश ऋषि, पूर्वी सिंहभूम और सराईकेला खरसावां में सर्वोदय मित्र मंडल और छात्र युवा संघर्ष वाहिनी के कुमार दिलीप के साथ विश्वनाथ, हीरू प्रामाणिक, दिलीप कुमार महतो, गुरुपद, प्रशांत, निर्मल और कामेश्वर आदि ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

**–विश्वनाथ आजाद**

*'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly*
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2020
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

# देवेन्द्र आर्य की सात ग़ज़लें

## एक

दर्द का भी अजीब किस्सा है।
हाल पूछो तभी उभरता है।
वह बेचारी तो बोलती भी नहीं,
पेड़ झुट्टे हवा से लड़ता है।
कब हमें कर दे वक्त के बाहर,
वक्त का यूं भी क्या भरोसा है!
तैरती थी नदी मछलियों-सी,
मैंने तो वह भी दौर देखा है।
ले के रख लो, चढ़ेंगे दाम आगे,
उस तरफ़ धूप कितने बिस्वा है?
जाने क्या गड़ता रहता आँखों में,
मुझको लगता है ख्वाब गड़ता है।
कौन पूरा है पूरी दुनिया में,
रात आधी है, दिन भी आधा है।
सब से पहला सवाल पैसे का,
सबसे अन्तिम सवाल पैसा है।

## दो

कौन किसकी तरफ़ किसके क्या हैं बयां।
आइनों की ज़बां पत्थरों के निशां।
दोनों बीमाशुदा-आंधियां, बिजलियां,
रौशनी हो गई जैसे अंधा कुआं।
पहले तोते उड़े फिर उड़ीं तितलियां,
अच्छे दिन के गुमां तालियाँ तालियां!
सर पे गठरी लिए पांव पैदल कहां?
शव के सिरहाने थीं गन्ने की पर्चियां।
क़ातिलों ने लिखीं अम्न की दास्तां,
मुल्क तैयार है, आइये मेहरबां!

## तीन

फ़ाइलों में उग रही थी नीम, उसका क्या हुआ?
स्वस्थ भारत की नयी स्कीम! उसका क्या हुआ?
मीरजाफ़र रह गए, जयचंद सारे उड़ गए,
देशभक्तों की बनी थी टीम, उसका क्या हुआ?
दाग़, धब्बे पिछले सत्तर साल के महफ़ूज़ हैं,
वो जो थी हिंदुत्व वाली क्रीम, उसका क्या हुआ?
सब वही, सब कुछ वही, बद से भी बदतर हो गया,
होने वाली थी नयी तंज़ीम, उसका क्या हुआ?
बस विदेशी पर स्वदेशी की मुहर लगती रही,
आपकी वो वैदिकी तालीम! उसका क्या हुआ?

## चार

ठहाके जिस तरह से आंसुओं के साथ रहते हैं।
हम अपने घर में अपनी ख़ामियों के साथ रहते हैं।
हवाओं को हवा देना, उगाना और चबा लेना,
ये किस्से क्यों हमेशा कुर्सियों के साथ रहते हैं?
ये दुनिया है, नहीं भी है, मुकम्मल भी, अधूरी भी,
हम इस दुनिया में कुछ आपत्तियों के साथ रहते हैं।
जिन्हें महसूस कर लें मर्द, इतना भी बहुत है यार!
कुछ ऐसे ग़म हैं, जो बस औरतों के साथ रहते हैं।
ज़मीं पर आग पानी साथ में क्यों रह नहीं सकते,
फ़लक पर अब्र भी तो बिजलियों के साथ रहते हैं!
एक अनदेखा-सा भय, दूरी, खुशी सब में बने रहना,
कि जैसे बाप अपनी बेटियों के साथ रहते हैं।
पटरियों को उजाड़ोगे तो रौनक़ रूठ जाएगी,
धड़कते शहर अपनी गुमटियों के साथ रहते हैं।

## पांच

कुछ तो नया करेगी ही।
यह क्वारंटाइन धरती।
लोगो देख करोना का!
डैनों बिन उड़ता पंक्षी।
क़ब्र सरीखी दिखती है,
अब तो छह फिट की दूरी।
हम क्या मुंह दिखलाते यार!
अगर न होते तब्लीगी?
जीत का जज़्बा लगता है,
बिना हंसी के ही ही ही।
बिलियन ट्रिलियन वालों ने,
की है लाशों की खेती।
टेस्ट पाजिटिव निकला है,
भूख की कोई दवा बनी?

## छह

रौशनी की उम्र थी कच्ची।
काश! तुमने जिद न की होती।
आइनों में किसने डाले खम,
किसके कारण आस्था भटकी?
सत्य की हिंसा में उजड़ा कौन?
गांधी या कस्तूरबा गांधी?
सच के इतने रंग, इतने रूप!
कोई भी हो जाएगा शक्की।
टैक्स का जब मसअला आया,
सिल्क साली हो गयी खादी।
ऐसा भी क्या था कि सबके सब,
सांप को कहने लगे रस्सी!
ख़्वाब केवल ख़्वाब केवल ख़्वाब,
जिंदगी ऐसे नहीं चलती।

## सात

घूर पर कालीन-सा हो जाए।
बज़्म में कुछ दीन-सा हो जाए।
नागरिकताओं का क्या होगा?
मुल्क गर 'शाहीन'-सा हो जाए!
उसको दुश्मन की है क्या दरकार,
दोस्त जिसका चीन-सा हो जाए।
भक्त तो फगुना ही जाएंगे,
संत गर शौक़ीन-सा हो जाए।
हो, मगर दिखती न हो दूरी,
फ़ासला शालीन-सा हो जाए।
इतनी रौनक़ दे खुदा मुझको,
आइना श्रीहीन-सा हो जाए।
क्यों कहे ऐसी ग़ज़ल कोई,
कह के ख़ुद ग़मगीन-सा हो जाए!

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए प्रकाशक अरविन्द अंजुम द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार